श्रावण वीर नि० सं० २४६६
अगस्त १९४०

अनेकान्त

वर्ष ३, किरण १०
वार्षिक मूल्य ३ रु०

सम्पादक—
जुगलकिशोर मुख्तार
अधिष्ठाता वीर-सेवामन्दिर सरसावा (सहारनपुर)

संचालक—
तनसुखराय जैन
कनॉट सर्कस पो० बो० नं० ४८ न्यू देहली।

मुद्रक और प्रकाशक—अयोध्याप्रसाद गोयलीय।

विषय-सूची

१. देवनन्दि-पूज्यपाद-स्मरण ५५७
२. हम और हमारा यह सारा संसार—[बा० सूरजभान वकील ५५९
३. क्या स्त्रियाँ संसारकी क्षुद्र रचनाओंमें से हैं ?—[श्रीललिताकुमारी जैन विदुषी, प्रभाकर ५६९
४. दीपक के प्रति—[श्रीरामकुमार 'स्नातक' ५७२
५. आत्मोद्धार-विचार—[श्री अमृतलाल चंचल ५७३
६. सफेद पत्थर अथवा लाल हृदय—[दीपक से ५७७
७. नृपतुंग का मतविचार—[श्री एम. गोविन्द पै ५७८
८. नवयुवकोंको स्वामी विवेकानन्दके उपदेश—[अनु० डा० बी० एल० जैन पी० एच० डी० ५९६
९. तामिलभाषाका जैन साहित्य —[प्रो० ए० चक्रवर्ती एम. ए. आई. ई. एस. ... ५९७
१०. अहिंसा सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण प्रश्नावली—[विजयसिंह नाहर ६०५
११. वीरोंकी अहिंसाका प्रयोग—[श्री महात्मा गाँधी ६०७
१२. उच्च कुल और उच्च जाति [श्री. बी. एल. जैन ... ... टाइटिल ३

संशोधन

गत जून-जुलाई मासकी संयुक्त किरण (८-९) में मुद्रित 'परिग्रह-परिमाण-व्रतके दासी-दास गुलाम थे' इस लेखके छपनेमें कुछ अशुद्धियाँ हो गई हैं; जिनमेंसे खटकने वाली चंद खास अशुद्धियोंका संशोधन नीचे दिया जाता है। पाठकजन उसे अपनी अपनी प्रतिमें बना लेवें:—

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२९	१	१८	षग्रिहके	परिग्रहके
,,	२	७	खेल	खेत
५३०	२	१५	१५०	१०५
५३१	२	४	दास्याःस्युः	अदासाःस्युः
,,	,,	२०	४८-१५	८-४१५
५३२	१	२६	११९४	११९४

—प्रकाशक

दानवीर रा० ब० सेठ हीरालालजी, इन्दौर

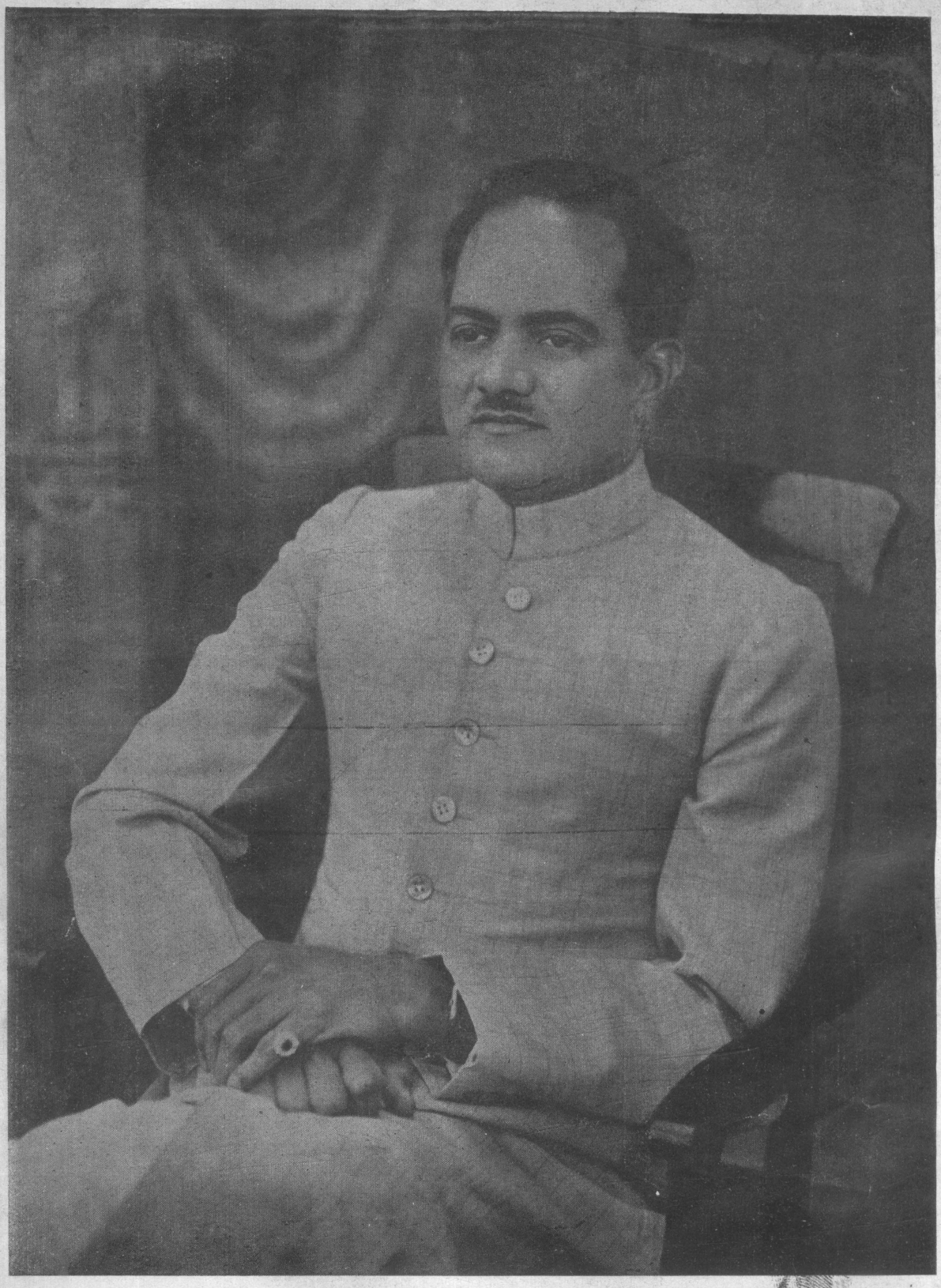

आपने १५० जैनेतर संस्थाओं--यूनिवर्सिटियों, कालेजों, हाईस्कूलों और लाइब्रेरियों को १ वर्ष के लिए और १०० जैनमन्दिरों पुस्तकालयोको ६ माहके लिए 'अनेकान्त' अपनी ओरसे भिजवानेकी उदारता दिखाई है।

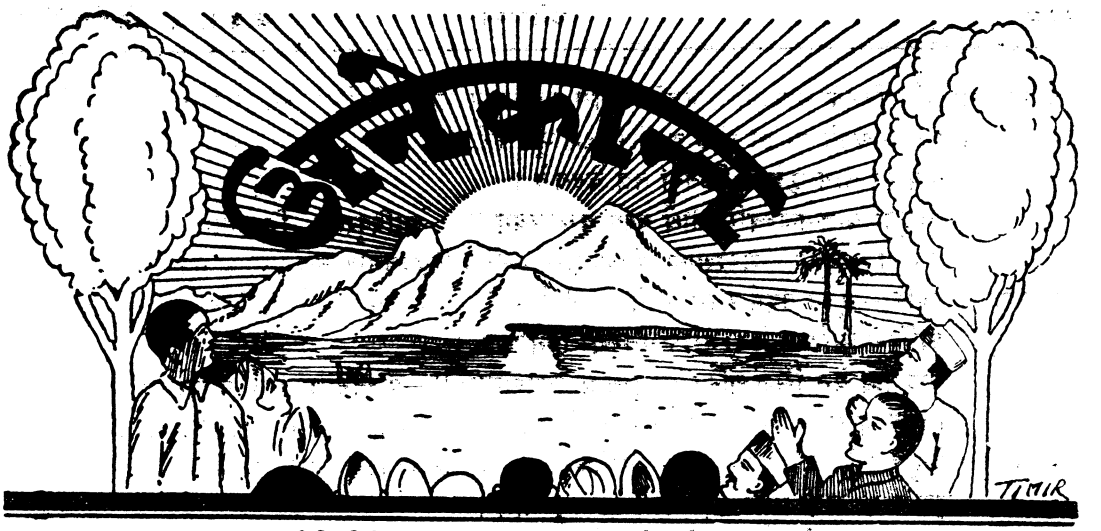

नीति-विरोध-ध्वंसी लोक-व्यवहार-वर्तकः सम्यक् ।
परमागमस्य बीजं भुवनैकगुरुर्जयत्यनेकान्तः ॥

वर्ष ३ | सम्पादन-स्थान—वीरसेवामन्दिर (समन्तभद्राश्रम), सरसावा, जि० सहारनपुर
प्रकाशन-स्थान—कनॉट सर्कस, पो० बो० नं० ४८, न्यू देहली
श्रावण-पूर्णिमा, वीरनिर्वाण सं०२४६६, विक्रम सं०१९९७ | किरण १०

देवनन्दि-पूज्यपाद-स्मरण

यो देवनन्दि-प्रथमाभिधानो बुद्ध्या महत्या स जिनेन्द्रबुद्धिः ।
श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभिर्यत्पूजितं पादयुगं यदीयं ॥ —श्रवणबेल्गोल शि०नं० ४०

जिनका प्रथम नाम—गुरुद्वारा दिया हुआ दीक्षानाम—'देवनन्दी' था, जो बादको बुद्धिकी प्रकर्षताके कारण 'जिनेन्द्रबुद्धि' कहलाए, वे आचार्यश्री 'पूज्यपाद' नामसे इसलिये प्रसिद्ध हुए हैं कि उनके चरणोंकी देवताओं ने आकर पूजा की थी।

श्रीपूज्यपादोद्धृतधर्मराज्यस्ततः सुराधीश्वरपूज्यपादः ।
यदीयवैदुष्यगुणानिदानीं वदन्ति शास्त्राणि तदुद्धृतानि ॥
धृतविश्वबुद्धिरयमत्र योगिभिः कृतकृत्यभावमविभ्रदुच्चकैः ।
जिनवद्बभूव यदनङ्गचापहृत स जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधुवर्णितः ॥— श्रवणबेल्गोल शि०ले०नं० १०८

श्री पूज्यपादने धर्मराज्यका उद्धार किया था—लोकमें धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा की थी—इसीसे आप देवताओंके अधिपति-द्वारा पूजे गये और 'पूज्यपाद' कहलाये। आपके विद्याविशिष्ट गुणोंको आज भी आपके द्वारा उद्धार पाये हुए—रचे हुए—शास्त्र बतला रहे हैं—उनका खुला गान कर रहे हैं। आप जिनेन्द्रकी तरह विश्व-बुद्धिके धारक समस्त शास्त्रविषयोंके पारंगत थे और कामदेवको जीतने वाले थे, इसीसे आपमें ऊँचे दर्जेके कृत-कृत्यभावको धारण करने वाले योगियोंने आपको ठीक ही 'जिनेन्द्रबुद्धि' कहा है।

श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौषधर्द्धि र्जीयाद्विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः ।
यत्पादधौतजल-संस्पर्शप्रभावात् कालायसं किल तदा कनकीचकार ॥ —श्र० शि० नं० १०८

जो अद्वितीय औषध-ऋद्धिके धारक थे, विदेह-स्थित जिनेन्द्र भगवानके दर्शनसे जिनका गात्र पवित्र

हो गया था और जिनके चरण-धोए जलके स्पर्शसे एक समय लोहा भी सोना बन गया था, वे श्रीपूज्यपाद मुनि जयवन्त हों—अपने गुणोंसे लोक हृदयोंको वशीभूत करें।

कवीनां तीर्थकृद्देवः किंतरां तत्र वर्ण्यते।
विदुषां वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयम्॥ —जिनेन्द्रबुद्धि, विद्वज्जनः

जिनका वाङ्मय—शब्दशास्त्ररूपी व्याकरण—तीर्थ विद्वज्जनोंके वचनमलको नष्ट करने वाला है, वे देवनन्दी कवियोंके—नूतन संदर्भ रचने वालोंके—तीर्थंकर हैं, उनके विषयमें और अधिक क्या कहा जाय?

अचिन्त्यमहिमा देवः सोऽभिवन्द्यो हितैषिणा।
शब्दाश्च येन सिद्ध्यन्ति साधुत्वं प्रतिलम्भिताः॥—पार्श्वनाथचरिते, वादिराजः

जिनके द्वारा—जिनके व्याकरणशास्त्रको लेकर—शब्द भले प्रकार सिद्ध होते हैं, वे देवनन्दी अचिन्त्य महिमायुक्त देव हैं और अपना हित चाहने वालोंके द्वारा सदा वन्दना किये जानेके योग्य हैं।

पूज्यपादः सदा पूज्यपादः पूज्यैः पुनातु माम्।
व्याकरणार्णवो येन तीर्णो विस्तीर्णसद्गुणः॥ —पाण्डवपुराणे, शुभचन्द्रः

जो पूज्योंके द्वारा भी सदा पूज्यपाद हैं, व्याकरण-समुद्रको तिर गये हैं और विस्तृत सद्गुणोंके धारक हैं, वे श्री पूज्यपाद आचार्य मुझे सदा पवित्र करो—नित्य ही हृदयमें स्थित होकर पापोंसे मेरी रक्षा करो।

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः काय-वाक्-चित्तसंभवम्।
कलंकमंगिनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते॥ —ज्ञानार्णवे, श्रीशुभचन्द्रः

जिनके वचन प्राणियोंके काय, वाक्य और मनः सम्बंधी दोषोंको दूर कर देते हैं—अर्थात् जिनके वैद्यक-शास्त्रके सम्यक् प्रयोगसे शरीरके, व्याकरणशास्त्रसे वचनके और समाधिशास्त्रसे मनके विकार दूर हो जाते हैं—उन श्रीदेवनन्दी आचार्यको नमस्कार है।

न्यासं जैनेन्द्र संज्ञं सकलबुधनुतं पाणिनीयस्य भूयो-
न्यासं शब्दावतारं मनुजततिहितं वैद्यशास्त्रं च कृत्वा।
यस्तत्त्वार्थस्य टीकां व्यरचयदिह भात्यसौ पूज्यपाद-
स्वामी भूपालवन्द्यः स्वपरहितवचः पूर्ण दृग्बोधवृत्तः॥ —नगरताल्लुक शि० लेख०नं० ४६

जिन्होंने सकल बुधजनोंसे स्तुत 'जैनेन्द्र' नामका न्यास (व्याकरण) बनाया, पुनः पाणिनीय-व्याकरण पर 'शब्दावतार' नामका न्यास लिखा तथा मनुज-समाजके लिये हितरूप वैद्यक शास्त्रकी रचना की और इन सबके बाद तत्त्वार्थसूत्रकी टीका (सर्वार्थसिद्धि) का निर्माण किया, वे राजाओंसे वन्दनीय—अथवा दुर्विनीत राजासे पूजित—स्वपर-हितकारी वचनों (ग्रन्थों) के प्रणेता और दर्शन-ज्ञान-चारित्रसे परिपूर्ण श्रीपूज्यपाद स्वामी (अपने गुणोंसे) खूब ही प्रकाशमान हैं।

जैनेन्द्रं निजशब्दभागमतुलं सर्वार्थसिद्धिः परा
सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धकवितां जैनाभिषेकः स्वकः।
छन्दः सूक्ष्मधियं समाधिशतकं स्वास्थ्यं यदीयं विदा-
माख्यातीह स पूज्यपादमुनिपः पूज्यो मुनीनां गणैः॥—श्रवणबेल्गोल शि० लेख नं० ४०

जिनका 'जैनेन्द्र' (व्याकरण) शब्दशास्त्रमें अपने अतुलित भागको 'सर्वार्थसिद्धि' (तत्त्वार्थटीका) सिद्धान्तमें परम निपुणताको, 'जैनाभिषेक' ऊँचे दर्जेकी कविताको, छन्दःशास्त्र बुद्धिकी सूक्ष्मता (रचनाचातुर्य) को और 'समाधिशतक' जिनकी स्वात्मस्थिति (स्थितप्रज्ञता) को संसारमें विद्वानों पर प्रकट करता है वे 'पूज्यपाद' मुनीन्द्र मुनियोंके गणोंसे पूजनीय हैं।

हम और हमारा यह सारा संसार

[लेखक—बा० सूरजभान वकील]

उत्थानिका

कोई कोई पुरुष भाग्यको ही सब कुछ मानकर, उसके द्वारा ही सब कुछ होना स्थिर करके उसके विरुद्ध कुछ भी न हो सकनेका सिद्धान्त स्थिर कर लेते हैं और हौंसला, हिम्मत, कोशिश और पुरुषार्थ सब ही को व्यर्थ समझ बैठते हैं। जिस देश या जातिमें ऐसी लहर चल जाती है वह नष्ट हो जाते हैं और गुलाम बन जाते हैं। अतः इस लेखके द्वारा इस बातके समझानेकी कोशिश की गई है कि भाग्य क्या है वह किस प्रकार बनता है, उसकी शक्ति कितनी है और उसका कार्य क्या है; संसारके जीवों और अजीव पदार्थोंके साथ प्रत्येक जीवका संयोग किस प्रकार होता है और उस संयोगका क्या असर उस जीव पर पड़ता है; वह संयोग किस प्रकार मिलाया जा सकता है, किस प्रकार रोका जा सकता है और किस प्रकार उससे लाभ उठाने या उसकी हानियोंसे बचनेकी कोशिश की जा सकती है किस प्रकार आगे के लिये अपना भाग्य उत्तम बनाया जा सकता है और किस प्रकार बने हुए खोटे भाग्यको सुधारा जा सकता है। आशा है पाठक इस लेखको आद्योपान्त पढ़कर ही इस पर अपनी मति स्थिर करेंगे और यदि उन्हें यह कथन लाभदायक तथा सबके लिये हितकारी और ज़रूरी प्रतीत हो तो हर तरहसे इसके प्रचारका यत्न करेंगे इसको सब तक पहुँचानेकी पूरी कोशिश करेंगे।

आकस्मिक घटनायें

हमारा यह सारा संसार अनन्तानन्त प्रकारके जीवों और अनन्तानन्त प्रकारके अजीव पदार्थोंसे भरा पड़ा है। सब ही जीव और अजीव अपने २ स्वभाव और शक्तिके अनुसार क्रिया करते रहते हैं, जिसका असर उनके आस पासकी चीज़ों पर पड़कर उनमें भी तरह तरहका अलटन-पलटन होता रहता है। सूरज निकलता है और छिपता है, पृथ्वी पर उसकी धूपके पड़नेसे पानीकी भाप बनकर हवामें मिल जाती है, कोई वस्तु सूखती है कोई सड़ती है। हवाके चलनेसे सूखे पत्ते, घास फूंस और धूल-मिट्टी उड़कर कहींसे कहीं जा पड़ती हैं। पानी भी बहता हुआ अपने साथ बहुत चीज़ोंको बहा ले जाता है और गला सड़ा देता है। आग भी किसी वस्तुको जलाती है, किसीको पिघलाती है, किसी को पकाती है और किसीको नर्म या कड़ी बना देती है। संसारके इन अजीव पदार्थोंमें न तो ज्ञान है और न कोई इच्छा या इरादा, न सुख दुख महसूस करनेकी शक्ति ही है; तब इनमें न तो कोई कर्मबंधन ही होता है और न इनका कोई भाग्य ही बनता है। इस कारण दूसरे पदार्थोंकी क्रियाओंसे इनमें जो अलटन पलटन हो जाता है, वह आकस्मिक या इत्तफ़ाकिया ही कहा जाता है। जैसाकि कुछ ईंट बाज़ारसे लाकर उनमेंसे कुछसे तो रोटी बनानेका चूल्हा बना लिया, कुछसे पूजाकी वेदी और कुछसे टट्टी फिरनेका पाखाना। इस

ही प्रकार बाज़ारसे कुछ कपड़ा लाकर कुछकी टोपी, कुछ की लंगोटी और कुछका जता साफ करनेका झाड़न बनी लिया। इस प्रकारके बहुभेद ज़रूरत या अवसरके अनुसार आकस्मिक या इत्तफ़ाकिया ही होते रहा करते हैं। पहलेसे तो उनका कोई भाग्य बना हुआ होता ही नहीं, जिसके अनुसार यह सब घटनायें होती हों।

बेजान वस्तुओंकी क्रियाओंका असर जैसा कि अजीब पदार्थों पर होता है वैसा ही जीवों पर भी होता है। जेठ-आषाढ़के कड़ाकेकी धूपमें छोटे छोटे कीड़े मर जाते हैं, तालाबका पानी सूख जाता है, जिससे उसकी सब मछलियाँ और अन्य भी जीव मर जाते हैं। बरसातकी पूर्वी हवा चलनेसे फूलों और फलोंमें कीड़े पड़ जाते हैं, पानीके बरसनेसे अनेक प्रकारके कीड़े पैदा हो जाते है और लाखों करोड़ों मर भी जाते हैं; परन्तु जेठ आषाढमें कड़ी धूपका पड़ना, बरसातमें पूर्वी हवाका चलना और पानीका बरसना, यह सब तो उन वस्तुओंके अपने स्वभावसे ही होता रहता है, किसी जीवके भाग्यसे नहीं होता। इस वास्ते उनसे जीवों पर जो असर पड़ता है वह तो अकस्मात् ही होता है।

हवा, पानी, अग्नि आदि अजीब पदार्थोंमें तो ज्ञान नहीं, इच्छा नहीं, इरादा नहीं, इस कारण उनकी तो सब क्रियायें उनके स्वभावसे ही होती हैं, किन्तु जीवों की जो क्रियायें इच्छा और इरादेसे होती हैं उनसे भी दूसरी वस्तुओं पर ऐसे असर पड़ जाते हैं, ऐसे अलटन-पलटन हो जाते हैं जिनकी न उनको इच्छा ही होती है और न इरादा ही। जैसे कि जंगलका एक हिरण शिकारीसे अपनी जान बचानेके वास्ते अँधाधुंध दौड़ा जा रहा है, परन्तु जहाँ जहाँ उसका पैर पड़ता जाता है वहाँके पौधे घास पात और मिट्टी सब चूर चूर होते चले जा रहे हैं, छोटे छोटे जीव भी सब कुचले जारहे हैं, परन्तु उस बेचारेको तो इसका कुछ भी ध्यान नहीं है कि क्या हो रहा है। इसी तरह एक आदमी गाड़ी में बैठा जा रहा है, गाड़ीके चलनेसे बेहद गर्दा उड़ता जा रहा है, जिससे उसको भी बहुत दुख हो रहा है और उस रास्ते पर चलने वाले दूसरोंको भी। गाड़ीके पहियोंकी रगड़ और बैलोंके पैरोंकी टापोंसे रास्तेमें पड़े हुए अनेक छोटे छोटे जीव भी कुचले जा रहे हैं। जिनके कुचलनेका इरादा गाड़ी वालेके मनमें बिल्कुल भी नहीं है, तब यह सब अकस्मात् ही तो होरहा है।

सब कुछ भाग्यसे ही होता रहना असंभव है

यदि यह कहा जाय कि यह सब कुछ अचानक नहीं हुआ किन्तु उन जीवोंके भाग्यसे ही हुआ तो साथ ही इसके यह भी मानना पड़ेगा कि इन जीवोंके भाग्य ही गाड़ीको खींच कर यहाँ लाये। परन्तु गाड़ी वाले पर और गाड़ीके बैलों पर सड़कके इन जीवोंके भाग्य की जबरदस्ती क्यों चली? इसका कोई भी सही जवाब न बन पड़नेसे अकस्मात् ही इनका कुचला जाना मानना पड़ता है। कसाईने गायको मारकर उसका मांस बेच, अपने बाल बच्चोंका पेट पाला, तो क्या गायके खोटे भाग्यने ही क़साईके हाथों गायके गले पर छुरा चलाया। डाकूने साहूकारके घर डाका डाल कर उसको और उसके सब घर वालोंको मारकर सब माल लूट लिया, तो क्या साहूकारका भाग्य ही डाकूको खैंच कर लाया और यह कृत्य कराया? तब तो न तो क़साईने ही कुछ पाप किया और न डाकूने ही कोई अपराध किया; बल्कि उल्टा गायके भाग्यने ही कसाई को गायके मारनेके वास्ते मजबूर किया और साहूकार का भाग्य ही बेचारे डाकूको खींचकर लाया। यदि

ऐसा ही माना जाये तब तो कोई भी किसी पापका करने वाला, अथवा अपराधी नहीं ठहरता है। तब तो राज्य का सारा प्रबन्ध, अदालत और पुलिस, धर्मशास्त्र और उपदेश सब ही व्यर्थ हो जाते हैं और बिल्कुल ही अँधा-धुंधी फैल जाती है।

यदि कोई यह कहने लगे कि सुख या दुख, जो कुछ भी मुझको होता है, वह सब मेरे ही अपने किये कर्मोंका फल या मेरे अपने भाग्यका ही कराया होता है, अकस्मात् कुछ नहीं होता। तो यह भी कहना होगा कि उम्र भर मैंने जो कुछ देखा, सूंघा, चखा, छुआ या सुना, उससे थोड़ा या बहुत दुख-सुख मुझको ज़रूर ही होता रहा है। इस वास्ते वे सब वस्तुएँ मेरे ही भाग्यसे संसारमें पैदा होती रही हैं। आज सुबह ही जिस मोटरकी गड़गड़ाहटने मुझे जगा दिया वह मेरे भाग्यसे ही चलकर उस समय यहाँ आई। उस समय मैं जाग तो गया परन्तु मुझे संदेह रहा कि सुबह हो गई या नहीं। कुछ देर पीछे ही रेलकी सीटी सुनाई दी वह सदा ६ बजे आती है, इसलिये उससे मुझे सुबह होनेका यक़ीन होगया। तब मेरा भाग्य ही मेरा संदेह दूर करनेके लिये रेलको खींचकर लाया। उस समय ठंडी हवा बड़ा आनन्द दे रही थी तब वह भी मेरे भाग्यकी ही चलाई चल रही थी। मैं उठकर जंगल को चल दिया, रास्तेमें लोगोंके घरोंसे बोलने चालनेकी आवाज़ आ रही थी। जिससे मेरा दिल बहलता था, तब उनको भी मेरे भाग्यने ही जगाकर बोलचाल करा रखी थी। रास्तेमें पेड़ों पर पक्षी तरह तरहकी बोलियाँ बोल रहे थे, जो बहुत प्यारी लगती थीं, तो उनको भी मेरे भाग्यने ही यह बोलियाँ बोलनेके वास्ते कहीं कहींसे लाकर वहाँ इकट्ठा किया था।

कुछ रोशनी हो जाने पर रास्तेके दोनों तरफ़के पेड़ भी बहुत ही सुहावने लगने लगे; तब मेरे भाग्यने ही तो थे सब पेड़ वहाँ उगाकर खड़े कर रखे थे। एक पेड़ टुंड मुंड सूखा खड़ा था, वह मुझे अच्छा नहीं लगा; तब मेरा कोई खोटा भाग्य ज़रूर था, जिसने यह सूखा पेड़ खड़ा कर रखा था। फिर जहाँ मैं टट्टी बैठा वहाँ हज़ारों डाँस मच्छर मुझे दिक़ करने लगे, उनको भी मेरा खोटा भाग्य ही खींचकर लाया था। लौटते समय रास्तेमें अनेक स्त्री पुरुष आते जाते दीख पड़े, जिनसे मन-बहलाव होता रहा; तब वे भी मेरे भाग्यके ही ज़ोरसे वहाँ आ जा रहे थे। फिर आबादीमें आकर तो ढोर-डंगरों, स्त्री पुरुषों और बूढ़े बच्चोंकी बहुतसी चहल पहल देखनेमें आई; तब यह सब दृश्य भी मेरे भाग्यने ही तो मेरे देखनेके वास्ते जुटा रखे थे। एक कुत्ता भौंक भौंक कर मुझे डराने लगा और मेरा पीछा भी करने लगा जिसको मैंने लाठीसे भगाया, उसको भी मेरे खोटे भाग्यने ही मेरे पीछे लगाया था। इसके बाद सूरज निकला तो मेरे भाग्यसे धूप फ़ैली तो मेरे भाग्यसे, फिर दिन भर जो मेरी आँखोंने देखा और कानोंने सुना, संसारके मनुष्यों और पशु पक्षियोंकी वे सब क्रियायें भी मेरे ही भाग्यसे हुई; और केवल उस ही दिन क्या किन्तु उम्र भर जो कुछ मैंने देखा या सुना, वह सब मेरे ही भाग्यसे होता रहा, मेंह बरसा तो मेरे भाग्यसे, बादल गर्जा तो मेरे भाग्यसे, बिजली चमकी तो मेरे भाग्यसे, पर्वा-पछवा हवा चली तो मेरे भाग्यसे, रातको अनन्तानन्त तारे निकले तो मेरे भाग्य से।

परसों रातको सोते सोते एकदम रोनेकी आवाज़ आई जिससे मैं जाग गया, मालूम हुआ कि कोई मर गया है, मैं बड़े मज़ेकी नींद सो रहा था, इस रोनेके शोरसे मेरी नींद टूट गई, तब यह भी मानना पड़ेगा

कि मेरे खोटे भाग्यसे ही पड़ौसीकी मौत हुई, जिससे रोनेका शोर उठा और मेरी नींद टूटी । मैं फिर सो गया और फिर एक भारी शोरके सबब जागना पड़ा; मालूम हुआ कि किसीके यहाँ चोरी होगई तब यह चोरी भी तो मेरे ही भाग्यने कराई जिससे शोर उठ कर मुझे जागना पड़ा । कई बार मैं देश-विदेश घूमने के लिये गया हूँ । मोटर या रेलमें सफ़र करते हुए जो भी मुसाफिर मुझे मिलते रहे हैं, उनको मेरा भाग्य ही कहीं कहींसे खींच लाकर सफ़रमें मुझे मिलाता रहा है । कोई उतरता है, कोई चढ़ता है, कोई उठता है, कोई बैठता है, कोई सोता है कोई जागता है, कोई हँसता है, कोई रोता है, कोई लड़ता है कोई झगड़ता है, यह सब कर्तव्य भी मेरा भाग्य ही उनसे मेरे दिखानेके वास्ते कराता रहा है । रेलमें बैठे हुए पहाड़-जंगल नदी-नाले, बाग़ बगीचे, खेत और मकान, उनमें काम करते हुए स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े, ढोर-डंगर, जंगलोंमें फिरते हुए तरह तरहके जंगली जानवर और उड़ते हुए पक्षी और भी जो जो दृश्य देखनेमें आये, वे सब मेरे ही भाग्यने मेरे देखनेके वास्ते पहलेसे जुटा रखे थे ।

फिर जिन जिन नगरोंमें मैं घूमता फिरा हूँ, वहाँके महल, मकान और दुकान, और भी जो जो मन-मनभावनी वस्तु वहाँ देखनेमें आई, वे सब मेरे भाग्य ने ही तो वहाँ मेरे दिखानेके वास्ते पहले ही बना रखी थीं । ग़रज़ कहाँ तक कहूँ, उम्र भर जो कुछ मेरी आँखोंने देखा या कानों ने सुना, वह सब मेरे दिखाने या सुनानेके वास्ते मेरे भाग्यने ही किया और संसारके जीवों और अजीव पदार्थोंसे कराया । सच तो यह है कि बीते हुए ज़मानेकी जो जो बातें पुस्तकोंमें पढ़नेमें आईं राज पलटे, लड़ाइयाँ हुईं, रामका बनवास, सीता का हरण, रावणसे युद्ध, महाभारतकी लड़ाई, और भी तरह२ की कथा-कहानी जो पढ़नेमें आई,वे सब घटनायें मेरे भाग्यने ही तो पुराने ज़मानेमे कराई होंगी, जिससे वे पुस्तकोंमें लिखी जावें और मेरे पढ़नेमें आवें । अब भी जो जो मामले दुनियाँमें होते हैं और समाचार पत्रों में छपकर मेरे पढ़नेमें आते हैं या लोगबागोंसे सुननेमें आते हैं वे सब मामले मेरा भाग्य ही तो दुनियाँ भरमें कराता रहता है, जिससे वे छपकर मेरे पढ़नेमें आवें या लोगोंकी ज़बानी सुने जावें ।

इस प्रकार यदि कोई पुरुष दुनियां भरका सारा काम अपने ही भाग्यसे होता रहना ठहराने लगे, यहाँ तक कि लाखों करोड़ों वर्ष पहले भी दुनियाका जो वृतान्त पुस्तकोंमें पढ़नेमें आता है, उसको भी अपने ही भाग्यसे हुआ बताने लगे, तो क्या उसकी यह बात मानने लायक हो सकती है, या एक मात्र पागलकी बरड़ ठहरती है ।

इस तरह तो हर एक शख्स संसारकी समस्त रचनाओं और घटनाओंके साथ अपने भाग्यका सम्बन्ध जोड़ सकता है और उन सबका अपने भाग्यसे ही होना बतला सकता है; तब किसी भी एकके भाग्यसे उन सबके होनेका कोई नियम नहीं बन सकता और न जीव अजीव पदार्थोंका कोई स्वतंत्र अस्तित्व या व्यक्तित्व ही रह सकता है ।

आकस्मिक संयोग कैसे मिल जाते हैं

कहावत प्रसिद्ध है कि एक बैलगाड़ी चली जा रही थी । धूपकी गर्मीसे बचनेके वास्ते एक कुत्ता भी उस गाड़ीके नीचे २ चलने लगा । चलते २ वह यह भूल गया कि गाड़ी अपनी ताक़तसे चल रही है और मैं अपनी ताक़तसे, न गाड़ी मेरी ताक़तसे चल रही है और न मैं गाड़ीकी ताक़तसे, किन्तु गाड़ीके

नीचे नीचे चलनेसे मेरा उसका संयोग ज़रूर हो गया है। यह सब बातें भूलकर घमंडके मारे उसके दिमाग़ में यही समा गया कि यह गाड़ी भी मेरे ही सहारे चल रही है। इस ही प्रकार संसारमें अनन्तानन्त जीव और अजीव सब अपनी २ शक्ति और स्वभावके अनुसार ही कार्य करते हैं परन्तु एक ही संसारमें उनके सब कार्य होते रहनेसे एक दूसरेसे उनको मुठभेड़ होते रहना या संयोग मिलना लाज़िमी और ज़रूरी ही है। परन्तु इस तरह यह समझ बैठना कि उन सबके वे कार्य मेरे भाग्यसे ही हो रहे हैं, बड़ी भारी भूल है।

बाज़ारमें तरह तरहके ऐसे खिलौने मिलते हैं जो चाबी देनेसे तरह तरहके खेल करने लगते हैं। कोई दौड़ता है, कोई उछलता है, कोई कूदता है, कोई घूमता है, कोई नाचता है, कोई कलाबाज़ी करता है। अगर हम सबको चाबी देकर एकदम एक कमरेमें छोड़ दिया जावे तो वे सब अपना अपना काम करते हुये एक दूसरेसे टकरा जायेंगे। जिससे कोई उथल जायेगा, कोई कार्य करनेसे रुक जायेगा, कोई उलटा पुलटा काम करने लग जायेगा, किसीकी कूक निकल जायेगी लेकिन यह सब खिलौने तो अपनी २ शक्ति और स्वभावके अनुसार ही काम कर रहे थे। एक दूसरेसे तो इनका कोई भी संबंध नहीं था। केवल एक ही कमरेमें काम करते रहनेसे, आपसमें उनकी मुठभेड़ होगई और उनका खेल बखेल होकर ऐसी उथल-पुथल हो गई जो उनके स्वभावके बिल्कुल ही विरुद्ध थी. इस ही प्रकार संसारके सब ही जीव-अजीव अपनी २ शक्ति और स्वभावके अनुसार इस दुनियामें काम करते हैं, जिनकी आपसमें मुठभेड़ होजाना और उस मुठभेड़की वजहसे ही उनमें उथल-पुथल और खेल-बखेल होते रहना भी लाज़िमी और ज़रूरी ही है। ऐसी ही सब घटनायें आकस्मिक या इत्तफ़ाकिया कहलाती हैं। जो किसीके भाग्यकी कराई नहीं होती हैं।

पानीसे भरे तालाबमें ढेला मारनेसे एक गोल चक्करसा होजाता है और वह चक्कर अपने आस पासके पानीको टक्कर देकर दूसरा बड़ा चक्कर बना देता है। इसी तरह और भी बड़े बड़े चक्कर बनते बनते किनारे तक पहुँच जाते हैं। यदि इस ही बीचमें कोई दूसरा ढेला भी फेंक दिया जाय तो उसके भी चक्कर बनने लगेंगे और पहले चक्करसे टकराकर उन पहले चक्करोंको भी तोड़ने फोड़ने लगेंगे और खुद भी टूटने फूटने लगेंगे। इस ही प्रकार यदि सैंकड़ों ढेले एक दम उस तालाबमें फैंके जावें तो वे अलग अलग सैंकड़ों चक्कर बनाकर एक दूसरेंसे टकरावेंगे और सब चक्कर टूट फूट कर पानीमें तहलकासा मचने लग जावेगा। यही हाल संसारके अनन्तानन्त जीवों और अजीवोंकी क्रियाओंका है, जिनके सब काम इस एकही संसारमें होते रहनेके कारण आपसमें टकराते हैं और गड़बड़ पैदा होती है।

यह सब मुठ-भेड़ या संयोग आकस्मिक या. इत्तफ़ाकियां ही होता है, किसीके भाग्यका बाँधा हुआ नहीं होता है। तब ही तो सब ही जीव हानिकारक संयोगोंसे बचनेकी और लाभदायक संयोगोंको मिलानेकी कोशिश करते रहते हैं, यह ही सब जीवोंका जीवन है, इस ही में उनका सारा जीवन व्यतीत होता रहता है, इसीको हिम्मत या पुरुषार्थ कहते हैं, यही एक मात्र जीव और अजीवमें भेद है। अजीव पदार्थोंमें न हिम्मत है न इरादा, जो कुछ होता है वह उनके स्वभावसे ही होता रहता है। परन्तु जीवोंमें हिम्मत भी है और इरादा भी है। इस ही कारण वे भाग्य होनहार वा प्रकृतिके भरोसे नहीं बैठते हैं। जंगलके जीव भी खाना पानीके लिये ढूंढ भाल करते हैं, इधर उधर फिरते हैं,

धूप और बारिशसे बचनेकी कोशिश करते हैं और मारे जानेका भय होने पर दौड़-भाग कर या लड़ भिड़कर अपने बचावका भी उपाय करते हैं। मनुष्य तो बिल्कुल ही उद्यम और पुरुषार्थका पुतला है, इस ही कारण अन्य जीवोंसे ऊँचा समझा जाता है। वह पशु-पक्षियों के समान अपना खाना-पीना ढूंढता नहीं फिरता है, कुदरतसे आप ही आप जो पैदा हो जाय उस ही को काफ़ी नहीं समझता है; किन्तु स्वयं सहस्रों प्रकारकी खानेकी वस्तुएँ पैदा करता है, अनेक प्रकारके संयोग मिलाकर और पका कर उनको सुस्वादु और अपनी प्रकृतिके अनुकूल बनाता है, क्या खाना लाभदायक है और क्या हानिकारक, क्या वस्तु किस अवस्थामें खानी चाहिये और क्या नहीं, इन सब बातोंकी जाँच पड़ताल करता है, धूप हवा और पानीसे बचनेके वास्ते कपड़े बनाता है, मकान चिनता है, आग जलाता है, पंखा हिलाता है, रातको रोशनी करता है, पानीके लिये कुआ खोदता है या नल लगाता है, धरती खोदकर हज़ारों वस्तु निकाल लाता है और उनको अपने काम की बनाता है, अनेक पशु-पक्षियोंको पालकर उनसे भी अपना कार्य सिद्ध करता है, और इस तरह अनेक प्रकारके उद्यम करते रहनेमें ही सारा जीवन बिताता है। जितना जितना यह इस विषयमें उन्नति करता है जितना जितना यह संसारकी वस्तुओं पर काबू पाता जाता है उतना उतना ही बड़ा गिना जाता है। जो भाग्य या होमहारके भरोसे बैठा रहता है वह दुख उठाता है जिस देश या जिस जातिमें यह हवा चल जाती है जो भाग्यको सर्वशक्तिमान मानकर सब कुछ उस ही के द्वारा होना मान बैठते हैं वह देश या जाति मनुष्यत्वसे गिरकर पशु समान हो जाती है दूसरोंकी गुलाम बनकर खूंटेसे बाँधी जाती है या जीवनहीन हो कर ईंट पत्थरके समान निर्जीव बन जाती है।

भाग्य क्या है और वह किस तरह बनता बिगड़ता है

यह हम हर्गिज़ नहीं कहते कि अबसे पहला कोई जन्म ही नही है या जीवोंके पहले कोई कर्म ही नही हैं, जिनका फल इस जन्ममें न हो रहा हो या जीवोंका कोई भाग्य ही नहीं है। यह सब कुछ है; किन्तु जितना उनका फल है, जितनी उनकी शक्ति है, उतनी ही मानते हैं, उनको सर्व शक्तिमान नहीं मानते, न यह मानते हैं कि सब कुछ उन ही के द्वारा होता है। जीवके कर्म क्या हैं, उनका बंधन जीवके साथ किस प्रकार होता है, उन कर्मोंकी शक्ति क्या है और उनका काम क्या है और भाग्य क्या है, किस तरह बनता है। इन सब बातोंकी जांच करनेसे ही काम चलता है, तब ही कुछ पुरुषार्थ किया जा सकता है और पुरुष बना जा सकता है।

आजकलकी साइंसने यह बात तो भले प्रकार सिद्ध कर दी है कि संसारमें जीव या अजीव रूप जो भी पदार्थ हैं उनके उपादानका कभी नाश नहीं होता है और न नवीन उपादान पैदा ही होता है, किन्तु उनकी पर्याय, अवस्था रूप अवश्य बदलता रहता है। लकड़ी जल कर राख, कोयला या धुंआँ बन जाती है, उसमें से नाश एक परमाणुका भी नहीं होता है। पानी गर्मी पाकर भाप बन जाता है और सर्दी पानेसे जमकर बर्फ़ बन जाता है। एक ही खेतमें तरह तरहके फूलों-फलों, तरकारियों और अनाजोंके पेड़-पौदे और बेलें लगी हुई हैं, जंगली झाड़ियाँ और घास फूस भी तरह २ के उगे हुए हैं। यह सब एक ही प्रकारकी मिट्टी-पानीसे परवरिश पा रहे हैं और बढ़ रहे हैं। उस ही मिट्टी

पानीसे नीमका पेड़ बढ़ रहा है और उस ही से नींबू नारंगी और आम-इमली का। भावार्थ यह है कि उस ही मिट्टी पानीके परमाणु नीमके पेड़के अन्दर जाकर नीमके पत्ते, फूल और फल बन जाते हैं और वे नारंगी के पेड़में जाकर नारंगीके फूल फल और पत्ते बन जाते हैं। फिर इन सहस्रों प्रकारकी वनस्पतिको गाय, बकरी, भैंस, खाती हैं तो उन जैसा अलग २ प्रकारका शरीर बनता रहता है और मनुष्य खाता है तो मनुष्यकी देह बन जाती है और फिर अन्तमें यह सब वनस्पति, पशु और मनुष्य मिट्टीमें मिलकर मिट्टी ही हो जाते हैं, इस प्रकार यह आश्चर्यजनक परिवर्तन अजीव पदार्थों का होता रहता है। यह चक्कर सदासे चला आता है और सदा तक चलता रहेगा।

हम यह पहले ही कह चुके हैं कि संसारमें दो प्रकारके पदार्थ हैं एक जीव और दूसरे अजीव। जीवों का शरीर भी अजीव पदार्थोंका ही बना होता है, इस ही कारण जीव निकल जाने पर मृतक शरीर यहीं पड़ा रहता है। जब ससारकी कोई वस्तु नवीन पैदा नहीं होती है और न नष्ट ही होती है केवल अवस्था ही बदलती रहती है, ऐसा सायंसने अटल रूप सिद्ध कर दिया है तब जीवोंकी बाबत भी यह ही मानना पड़ता है कि वे भी सदासे हैं और सदा तक रहेंगे। बेशक पर्यायका पलटना उनमें भी ज़रूर होता रहेगा। जीवकी भी एक पर्याय छूटने पर कोई दूसरी पर्याय ज़रूर हो जाती है और पहले भी उसकी कोई पर्याय ज़रूर थी जिसके छूट जाने पर उसकी यह वर्तमान पर्याय हुई है। अजीव पदार्थोंकी तरह जीवोंकी भी यह अलटन पलटन सदासे ही होता चला आ रहा है और सदा तक होता रहेगा। जीवोंकी जितनी जातियाँ संसारमें हैं जितने उनके भेद हैं उन ही में उनका यह अलटन पलटन होता रहता है।

जीवोंका शरीर तो मिट्टी-पानी आदि अजीव पदार्थोंका ही बना होता है, उसके अन्दर जो जीवात्मा होती है, उस ही में ज्ञान और राग-द्वेष, मान-माया, लोभ-क्रोध आदि भड़क, इच्छा, विषय-वासना हिम्मत हौंसला, इरादा और सुख-दुखका अनुभव आदिक होता है। परन्तु यह सब बातें प्रत्येक जीवमें एक समान नहीं होती है। किसीका कैसा स्वभाव होता है और किसीका कैसा; जैसाकि कोई गाय मरखनी होती है और कोई असील। मनुष्य भी जन्मसे ही कोई किसी स्वभाव का होता है और कोई किसी स्वभावका। इससे यही सिद्ध होता है कि पहिले जन्ममें जैसा ढाँचा किसी जीवके स्वभावका बन जाता है, वही स्वभाव वह मरने पर अपने साथ लाता है।

जीव और अजीव दोनों ही पदार्थोंमें, किसी काम को करते रहनेसे, उस कामको करते रहनेकी आदत पड़ जाती है। कुम्हार चाकको डंडेसे घुमाकर छोड़ देता है, तबभी वह चाक कुछ देर तक घूमता ही रहता है। लड़के डोरा लपेटकर लट्टू को घूमाते हैं, परन्तु डोरा अलग हो जाने पर भी वह लट्टू बहुत देर तक घूमा ही करता है, पानीको हिलाने या उंगलीसे घुमा देने पर वह स्वयमेव भी हिलता या घूमता रहता है। साल भर तक जो सन् संवत हम लिखते रहते हैं, नया साल लगने पर भी कुछ दिन तक वह ही सन् संवत लिखा जाता है। भाँग तम्बाकू आदि नशेकी चीज़ या मिर्च, मिठाई, खटाई आदि खाते रहनेसे उनकी आदत पड़ जाती है। ताश, चौपड़, शतरंज आदि खेलोंको बराबर खेलते रहनेसे उनकी ऐसी आदत पड़ जाती है कि ज़रूरी काम छोड़कर भी खेलनेको ही जी चाहने लगता है। जिन बच्चोंके साथ ज़्यादा लाड़ होता है उनका

स्वभाव ऐसा खराब हो जाता है कि उम्रभर सुधरना मुश्किल हो जाता है। खोटी संगत का भी बड़ा असर होता है। जिस स्त्री को वेश्या बनकर कुशील जीवन बिताना पड़ता है, निर्लज्जता और मायाचार उसका स्वभाव हो जाता है। कसाई और डाकू निर्दय हो जाते हैं। पुलिस और फौजके सिपाही भी कठोर हृदय बन जाते हैं। जिनकी झूठी प्रशंसा होती रहती है उसको अपने दोष भी गुण ही दिखाई देने लगते हैं, नसीहतसे उसको चिढ़ हो जाती है, यहाँ तक कि उसके दोष बताने वालों को वह अपना बैरी समझने लग जाता है। ऐसा ही और भी सब बातोंकी बाबत समझ लेना चाहिये।

इस प्रकार इस जन्ममें बने हुए हमारे स्वभावसे इस जन्ममें भी हमको सुख दुख मिलता है और अगले जन्ममें भी। मरने पर दुनियाकी कोई चीज़, जीव या अजीव, हमारे साथ नहीं जाती है। इस जन्मके हमारे सुख-दुखके सब सामान यहीं रह जाते हैं, अपनी जानमें भी ज्यादा प्यारे स्त्री, पुत्र, इष्टमित्र और धन-सम्पत्ति सब यहीं रह जाती है, यहां तक कि हमारा शरीर भी जिससे कि हमारा जीव बिल्कुलही एकमेक हो रहा था यहीं रह जाता है। इसी कारण हमारे इस शरीरमें जो आदतें पड़ गई थीं, जिनको हम अपनी ही आदतें माना करते थे, वे आदतें भी शरीरके साथ यहीं रह जाती हैं। यही नहीं बल्कि जो जो याददास्त हमारे दिमाग़में इकट्ठी होती रहती थीं, वे भी दिमाग़के साथ यहीं समाप्त हो जाती हैं। परन्तु मान माया, लोभ-क्रोधादिक तरंगे जो हमारी अन्तरात्मामें उठती रहती हैं, हमारी अन्तरात्मामें उनका संस्कार या आदत पड़कर, हमारी अन्तरात्मामें उनका बंधन होकर मरने पर भी वे हमारे साथ जाती हैं। यह हमारा जीवात्मा जिस प्रकारके स्वभावोंका पुतला बन जाता है उनही अपने स्वभावोंको साथ लेकर वह मरता है और उनही को साथ लेकर वह दूसरा जन्म लेता है। यही उसका कर्मबंधन, स्वभावका ढाँचा या भाग्य है, जो वह अपने आन्तरिक भावों या नीयतोंके अनुसार सदा ही बनता रहता है।

आज जो कपड़ा हमने पहना है, वह पाँच चार दिनके बाद मैला दिखाई देने लगता है। परन्तु क्या वह उसी दिन मैला हुआ है जिस दिन मैला दिखाई देता है? नहीं, मैला तो वह उस दिन ही समयसे होना शुरू हो गया था जबसे उसको पहनने लगे थे, परन्तु शुरू २ में उसका मैलापन इतना कमती था कि दिखाई नहीं देता था, होते २ जब वह मैलापन बढ़ गया, तब दखाई भी देने लग गया। ऐसे ही प्रत्येक समय जैसे २ भाव जीवात्माके होते हैं; बुरी या भली जैसी नीयत उसकी होती रहती है, वैसा ही रंग उस जीवात्मा पर चढ़ता रहता है। उसकी आदत या स्वभाव बनता रहता है।

भाग्य किस प्रकार सुधारा जा सकता है

अपने ही हाथों डाली इन आदतों या संस्कारोंका बिल्कुल ही ऐसा हाल होता है जैसा कि नशा पीकर पागल हुए मनुष्यका हो जाता है, वह सर्व प्रकारकी उलटी-पुलटी क्रिया करता है, बेहूदा बकता है और हानि लाभ का खयाल भूल जाता है। परन्तु चाहे कितना ही तेज़ नशा किया हो तो भी कुछ न कुछ ज्ञान उसमें बाकी जरूर रहता है तब ही तो कोई भारी खौफ सामने आने पर सारा नशा उतर जाता है और भयभीत होकर अपने बचाव का उपाय करने लगता है। किसी बड़े हाकिम आदिके सामने आ जाने पर भी नशा दूर हो जाता है। और होशकी बातें करने लग जाता है।

इस ही प्रकार बहुत बुरे कर्म-बंधनमें फंसा हुआ जीव भी कुछ न कुछ होश ज़रूर रखता है और अपनेको सुधार सकता है।

बाह्य कारण मनुष्यके स्वभाव पर बड़ा असर डालते हैं, इस ही से उसके सोये हुए संस्कार जागते हैं। अश्लील तस्वीरें देखकर, अश्लील मज़मून पढ़कर, अश्लील स्त्रियोंकी संगतीमें बैठकर कामवासना जागृत हो जाती है। गुस्सा दिलाने वाली बातें सुनकर क्रोध उठता है। शेरकी आवाज़ सुनकर ही भय हो जाता है। बहादुरीकी बातें सुनकर स्वयं अपने मनमें भी जोश आने लगता है। सुन्दर सुन्दर वस्तुओंको देखकर जी ललचाने लग जाता है। इस कारण हमको अपने भावोंको ठीक रखनेके वास्ते इस बातकी बहुत ज़्यादा ज़रूरत है कि हम ऐसे ही जीवों और अजीव पदार्थोंसे संयोग मिलावें जिसमें हमारे भाव उत्तम रहें, बिगड़ने न पावें और यदि किसी कारणसे हम अपनेको बुरी संगतिसे नहीं बचा सकते हैं तो उस समय अपने मन पर ऐसा कड़ा पहरा रखें कि हमारा मन उधर लगने ही न पावे।

मनुष्यको हर वक्त ही दो ज़बरदस्त ताक़तोंका सामना करना पड़ता है। एकतो संसार भरके अनन्तानन्त जीव और अजीव जो अपने २ स्वभावके अनुसार कार्य करते रहते हैं, एक ही संसारमें हमारा और इन सबका कार्य होते रहनेसे हमसे उनकी मुठभेड़का होते रहना ज़रूरी ही है। उनमेंसे किसी समय किसीका संयोग हमको लाभदायक होता है और किसीका हानिकारक। इस वास्ते एकतो हमको हर वक्त ही इस कोशिशमें लगे रहनेकी ज़रूरत है कि संसारके जीव और अजीवोंके हानिकर संयोगोंसे अपनेको बचाते रहें और लाभदायक संयोगोंको मिलाते रहें। दूसरे, बुरा या भला जो स्वभाव हमने अपना बना लिया है, जैसा कुछ भी अपने किये कर्मोंका बंधन हमने अपने साथ बाँध लिया है, उस स्वभावके ही अनुसार न नाचते रहें, किंतु उसको ही अपने क़ाबूमें रखें और अपने ही अनुसार चलावें।

भाग्यके ही भरोसे अपनेको छोड़ देने का खोटा परिणाम

जो लोग यह कहने लगते हैं कि हमारे भाग्यने जैसा हमारा स्वभाव बना दिया है उसको हम बदल नहीं सकते। हमको तो अपने भाग्यके ही अनुसार चलना होगा, इस ही प्रकार संसारके जिन जीवों और अजीव पदार्थोंसे हमारा वास्ता पड़ता है, जो कुछ हानि लाभ होना है, जो कुछ भाग्यमें बदा है; वह तो होकर ही रहेगा, उसमें तो बाल बराबर भी फरक नहीं आ सकता है, ऐसे लोग भाग्यके भरोसे हाथ पर हाथ धरकर तो नहीं बैठते हैं। उनके स्वभावका ढाँचा, उनके शरीरकी प्रकृति, उनकी इन्द्रियोंके विषय, मान-माया, लोभ क्रोधादिक भड़क, राग और द्वेष, उनको चुपचाप तो नहीं बैठने देता है इस कारण कामतो वे कुछ न कुछ करते ही रहते है, किन्तु ऐसे नशियालेकी तरह जो नशा पीकर अपनेको सम्हालनेकी कोशिश नहीं करता है, बल्कि नशे की तरंगके मुवाफिक ही नाच नचानेके लिये अपनेको ढीला छोड़ देता है। ऐसे भाग्यको ही सब कुछ मानने वाले भी अपने मनकी तरंगोंके अनुसार नाच नाचते रहते हैं और कहते रहते है कि क्या करें हमारा स्वभाव ही ऐसा बना है। इस प्रकार यह लोग अपनी खोटी २ कामनाओं, खोटी २ विषय वासनाओंमें ही फसे रहते हैं। क्रोध-मान-माया लोभ आदि जो भी जोश उठे या

भड़क पैदा हो उस ही के अनुसार करने लग जाते हैं, आगे पीछेकी कुछ सोच नहीं करते, नतीजेका कुछ भी खयाल नहीं करते। बेधड़क सब कुछ पाप करते हुए उसकी सब ज़िम्मेदारी दैव या भाग्यके ही सिर धरते रहते हैं। अपनेको तो निर्दोष मानते रहते हैं परन्तु दूसरे लोग छोटेसे छोटा भी जो दोष करै उसका दोषी उन ही को ठहराते हैं। दूसरोंके दोषोंका ज़िक्र कर करके उनकी बुराई खूब करते हैं और बड़े बनते रहते हैं। जिस प्रकार नशेकी तरंगमें नशेबाज या पागल अपने पागलपनमें अपनेको सारी दुनियाका राजा समझ बैठता है, हानि-लाभ समझाने वालेको मारने दौड़ता है, इस ही प्रकार ये भाग्यको सब कुछ मानने वाले भी अपनेको सबसे बड़ा समझने लगते हैं और दूसरोंको अपनेसे घटिया मानकर अपनी बड़ाई गाने और दूसरों को घटिया बतानेमें ही असीम आनन्द मानने लग जाते हैं। यह ही एक मात्र उनके जीवनका आधार हो जाता है। इस कारण जिस प्रकार नशेबाज़ नशेकी तरंगमें आपसमें एक दूसरे पर हकूमत जताते हुए, आपसमें खूब लड़ते हैं और जूतमपैजार होते हैं, इस ही प्रकार ये भाग्य पर ही निर्भर रहने वाले भीआपसमें एक दूसरे पर हकूमत जताकर और आपसमें लड़ भिड़कर ही अपना जी खुशकर लेते हैं। किन्तु जिस प्रकार नशियाला या पागल किसी होश वालेको देखकर अव्वलतो गीदड़ भभकी दिखाता है, किन्तु होश वालेकी तरफसे ज़रा भी सख्ती होने पर तुरन्त ही उसके आधीन हो जाता है और गुलाम बन जाता है, इस ही प्रकार भाग्य पर निर्भर रहने वाले भी बड़े बननेका दावा कर करके आपसमें तो खूब लड़ते हैं, किन्तु ग़ैरकी शकल देखते ही डरकर अपना खोटा भाग्य आया समझकर चुपके से उसके गुलाम बन जाते हैं।

हमारा ज़रूरी कर्तव्य

हमको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और बुद्धि लड़ाकर जांच लेना चाहिये कि हमारे संबंधमें तीन शक्तियां काम कर रही हैं, एक तो हमारे पहले कर्म या हमारी आत्माके पहले भाव, जिनसे अब तक बुरा भला हमारी आदतें या स्वभाव बनता रहा है; जो मरने पर भी हमारे साथ जाता है और कर्म-बन्धन या हमारे स्वभावका ढाँचा, या भाग्य कहलाता है। दूसरे हमारी आत्माकी असली ताकत जो हमारे इन कर्मों या स्वभाव या भाग्यके द्वारा नष्ट होनेसे बच रही है। तीसरे संसार भरके सब ही जीव और अजीव जो अपने २ स्वभावके अनुसार इस ही संसारमें काम करते हैं, इस कारण उनसे हमारी मुठभेड़ होना लाज़मी और जरूरी ही है। इस कारण हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपने उस आत्मिक ज्ञानके द्वारा जो हमारे कर्मोंने नष्ट नहीं कर दिया है हम अपने संचित कर्मों पर या स्वभावके ढाँचे वा भाग्य पर भी काबू रखें, उसको अपनी बुद्धिके अनुसार ही चलाते रहें और संसारके जीव अजीव पदार्थोंसे तो मुठभेड़ होती रहती है या हो सकती है उन पर भी पूरी २ दृष्टि रखें। उनमें अपने प्रतिकूलको मिलाते रहनेकी और प्रतिकूलसे बचते रहनेकी कोशिश करते रहें। यही पुरुषार्थ है जिसकी मनुष्यको हर वक्त ज़रूरत है। इस ज़रूरी पुरुषार्थके बिना तो मनुष्य मनुष्य ही नहीं है किन्तु, एक निर्जीव घासका तिनका है जो बेइख्तियार नदीमें बहा चला जाता है।

क्या स्त्रियाँ संसारकी क्षुद्र रचनाओंमें से हैं ?

[लेखिका—श्री ललिताकुमारी जैन विदुषी प्रभाकर जयपुर]

एक बार मैंने किसी पुस्तकमें 'स्त्रियाँ ही अपने आपको अयोग्य समझती हैं' इस शीर्षक अथवा इससे कुछ मिलता-जुलता प्रबंध पढ़ा था। उसका सारांश यही था कि सदियोंकी दासतासे स्त्रियोंका आत्मबल और स्वाभिमान इस क़दर कुचल दिया गया है कि अब वे स्वयं अपने आपको तुच्छ, क्षुद्र और अयोग्य समझने लगी हैं। वे अपने जीवनसे घृणा करती हैं और उत्थानके मार्गमें बढ़नेके लिए अपने आपको असमर्थ समझती हैं। उनके दिलोंमें यह अन्धविश्वास कूट कूट कर भरा हुआ है कि स्त्री-जाति तिरस्कार और अपमानके लिए पैदा हुई है। उसका अलग अपना कोई अस्तित्व नहीं है। वह सचमुच पुरुषोंके पैरकी जूती है और इसीलिए स्त्री होना या तो ईश्वरका अभिशाप है या पूर्वोपार्जित पापोंकी किसी बड़ी राशिका परिणाम है।

हमारे समाजमें अधिकाँश स्त्रियाँ, अशिक्षित और बे पढ़ी हैं और उनके खयालात भी ऐसे ही बने हुए हैं। हमारे ऐसे ही विचारोंने आज हमको पददलित बना रक्खा है। जो महिलाएँ स्त्री-पर्यायको पाप कृत्योंका फल, या जघन्य और क्षुद्र समझती हैं उनको मैं स्पष्ट तौरसे बतला देना चाहती हूँ कि वे बहुत बड़ी गलती पर हैं। उनको अपने ये कायर और गन्दे विचार बिलकुल निकाल देना चाहिएँ।

स्त्री आदि शक्ति है। स्त्री शक्तिके बिना दुनियाका कोई भी काम सफल नहीं हो सकता। स्त्री सीता है, स्त्री पार्वती है, स्त्री दुर्गा है, स्त्री लक्ष्मी है, स्त्री सरस्वती है। संसारका हरएक कार्य शक्तिसे सम्पन्न होता है और वह शक्ति स्त्री ही का स्वरूप है !

विश्वमें जो सुन्दर और सुखकर है वह स्त्री ही का प्रकारान्तर है। जहां पुरुष जाति अपने, वीरता, धीरता, गम्भीरता, काठिन्य, शौर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न है, वहां स्त्री-जाति अपने सौंदर्य, कोमलता, लावण्य, सेवा विनम्रता आदि गुणोंसे सुशोभित है। दोनों अपने अपने विशिष्ट स्वरूपोंमें समान हैं। कोई किसीसे कम या ज्यादा नहीं हैं। संसारकी रचनामें और इसकी हर एक स्थितिमें स्त्री और पुरुष का हाथ बिल्कुल बराबर है। समुद्रकी विशालता नदियोंके बल पर है फूलकी सौरभक आधार कली है। सूर्यमें ज्योति छिपी है। चांदकी शोभा चन्द्रिकासे है। मेघकी शोभा बिजलीसे है। ऊंचे ऊंचे पहाड़ चोटीके बिना खण्डहर सरीखे हैं। श्रद्धा बिना

ज्ञान भार स्वरूप है।

जमीन और आसमान, कलम और कागज, पेड़ और शाखा, उद्यान और वाटिका, फूल और पत्ती कहां तक कहें सृष्टिका कोई स्थल ऐसा नहीं है जहां स्त्री और पुरुष शक्तियां समान रूपसे काम न करती हों। और सब जाने दीजिये आत्माका चरम और उत्कृष्ट लक्ष्य कर्मोंका नाश करना है वह भी मुक्तिके रूपमें स्त्री ही के विशिष्ट स्वरूपमें स्थित है।

ऐसी अवस्थामें भी अगर महिलाएँ अपनी जाति को पाप कृत्योंका फल या दैवका अभिशाप समझती हैं तो यह उनकी भूल है। अगर स्त्री पर्यायमें पैदा होना पाप कृत्योंका फल और अभिशाप है तो पुरुष पर्यायमें पैदा होना कभी पुण्य कर्मोंका फल और आशीर्वाद नहीं हो सकता;क्योंकि दोनों शक्तियाँ एक होकर काम करती हैं और दोनों शक्तियाँ एक-दूसरी-शक्तिमें दूध और पानीकी तरह मिली हुई हैं। एकका बुरा होना दूसरी का बुरा होना है और एकका अच्छा होना दूसरीका अच्छा होना है। महात्माजी लिखते हैं--"अगर स्त्रियाँ ईश्वरकी क्षुद्र-हलके हर्जेकी रचनाओंमें से हैं तो आप जो उनके गर्भसे पैदा हुए हैं अवश्य ही क्षुद्र हैं।" मेरा खयाल है पुरुष जातिकी श्रेष्ठता, उत्तमता और आदर्शता पर मेरी बहिनोंको पूर्णविश्वास है और उनको स्त्री पर्यायकी हीनता और अनुत्तमतासे पुरुष जातिका भी अनुत्तम होना कभी वांछित नहीं हो सकेगा। मैं उनसे प्रार्थना पूर्वक अनुरोध करूँगी कि पुरुष-पर्यायके प्रति उनका जैसा विश्वास है वे उसे और भी मज़बूत और पक्का बनालें परन्तु साथ ही अपनी जातिका सम्मान और इज्जत करना कभी न भूलें। वरना उनकी यह धारणा बालू पर भीत खड़ी करनेके बराबर उस मनुष्यकी धारणाके समान है जो चाँदको प्रकाशका कारण मानकर चाँदनीको अंधकार का स्वरूप मानता है और सूर्यको प्रभाका अवतार मानकर उसकी किरणोंको ज्योतिविहीन समझता है।

यह तो हुई स्त्री पर्याय और पुरुष पर्यायकी समानताकी बात। अगर मैं स्पष्ट और साफ कहूँ तो किसी किसी जगह स्त्री पर्यायकी उत्कृष्टता और आदर्शके आगे पुरुष-पर्याय भी कुछ नहीं है और उस समय पुरुष पर्याय स्त्री पर्यायके साथ कभी बराबरीका दावा पेश नहीं कर सकती। वह आदर्श है 'मातृत्वका आदर्श' जो पुरुष पर्यायमें ढूंढने पर भी नहीं मिल सकता और स्त्री पर्याय मिलने पर ही प्राप्त किया जा सकता है। बड़े बड़े आचार्य, ऋषि, मुनि, महात्माओं ने मातृत्वके आदर्शको महान् बतलाया है। यह मातृत्वका ही आदर्श है जिसने तीर्थंकरों जैसे महान् आत्माओंको जन्म दिया, बड़े बड़े अवतारोंको पृथ्वीतल पर पैदा किया, बड़े बड़े ऋषि-मुनियोंके लिये अपना सुख त्याग किया। पं०कृष्णकान्त मालवीय लिखते हैं--

"स्त्री का सर्व श्रेष्ठ रूप माता है और सच मानो इससे मधुर, इससे सुखकर शब्द, इससे सुन्दररूप सृष्टि और संसारमें कोई दूसरा नहीं। संसारका समस्त त्याग, संसारका समस्त प्रेम, संसारकी सर्व श्रेष्ठ सेवा, संसारकी सर्व श्रेष्ठ उदारता एक माता शब्दमें छिपी पड़ी है।"

एक अज्ञात महापुरुष लिखते हैं—

"हे माता! तुम स्वर्गकी देवी हो, तुम मृत्यु लोकमें मनुष्योंका कल्याण करनेके हेतु माताके रूपमें अवतीर्ण हुई हो। सब लोग तुम्हारे अनन्त उपकारों के ऋणी हैं। तुम्हारे ऋणको कौन चुका सकता है?

हे माता ! भगवानसे हमारी यही याचना है कि वे हमें ऐसी शक्ति दें कि जिससे हम तुम्हारी सेवामें अपने इस जीवनको अर्पण कर सकें और भक्तिके आँसुओंके जलसे तुम्हारे चरणोंका चिरकाल तक प्रक्षालन करते रहें।"

'जननी जीवनसे'

एक संस्कृत कवि लिखते हैं :—

"जननी परमाराध्या जननी परमागतिः ।
जननी देवता साक्षात् जननी परमोगुरुः ॥
या कर्त्री परयात्री च जननी जीवनस्य नः ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥

'जननी जीवनसे'

मातृत्वके आदर्शकी प्रशंसामें ग्रंथ भरे पड़े हैं। सदियां चली जायें और उसका वर्णन समाप्त नहीं हो। क्या कोई ऐसा ज्ञानी, ध्यानी, महात्मा, नारायण, चक्रवर्ती, बलभद्र, राजसूंक अमीर, गरीब, बड़ेसे बड़ा और छोटेसे छोटा व्यक्ति है जो माताके उपकारके भार से न दबा जा रहा हो और क्या वह उसके किये हुए उपकारका बदला वापस देनेका सैंकड़ों जन्मोंमें भी साहसकर सकता है ? ऐसी अवस्थामें अगर कोई व्यक्ति चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष, शिक्षित हो या अशिक्षित उस स्त्रीपर्यायको नीच और जघन्य समझता है जिसमें मातृत्व जैसा सर्वोत्कृष्ट आदर्श विद्यमान है तो यह उसकी क्षुद्रता है और कृतघ्नता है और स्वयं स्त्रियों का तो यह समझना बहुत ही अपमान, लज्जा और कायरताका विषय है ।

लोगोंकी इस धारणाने कि स्त्री जाति पुरुष जातिके लिये पैदा की गई है और वह उसके भोगनेकी एक चीज़ है मनुष्य जातिका बहुत बड़ा अनिष्ट किया है। कारण, इस तरह पुरुषोंने स्त्रियोंको अपनी एक जायदाद और दूध देने वाली गाय-भैंसोंके समान समझा और इसीके अनुसार उनको एकने दूसरेसे छीननेकी कोशिश की। इस कोशिशमें बड़ी बड़ी लड़ाइयां हुई, मारकाटें हुईं, खूनके तालाब बहे और संसार सुखका स्थल न रह कर दुःख दारिद्र्य, क्लेश, अशान्ति, व्याकुलता और हज़ारों ही बिपदाओंका केन्द्र बन गया ! खेद है कि यह अवस्था अब तक भी वैसी ही चली आरही है। पुरुषोंने स्त्रियोंको जन्म दिया या स्त्रियोंने पुरुषोंको जन्म दिया ? यदि इस प्रश्न पर ज़रा भी विचार किया जाय तो यही निर्णीत होना चाहिये कि स्त्रियोंने पुरुषों को जन्म दिया और भारीसे भारी विपदाएं झेलकर उनका पालन किया। ऐसी हालतमें भी यह मानना कि स्त्रियाँ पुरुषोंके लिये पैदाकी गई हैं कितना बेढंगा और हास्यास्पद खयाल है। इसलिये जैसे हम यह बड़ी आसानीसे मान लेते है कि स्त्रियाँ पुरुषोंके लिये पैदा की गई हैं वैसे यह भी क्यों नहीं मानलें कि पुरुष स्त्रियों के लिये पैदा किये गये हैं। यद्यपि अनुभव और बुद्धिसे ठहरेगा तो यही कि दोनोंको दोनोंने पैदा किया और दोनों दोनोंके लिये पैदा हुये हैं। जैसे पुरुषोंको अपने उद्देश्य की सिद्धिके लिये स्त्रियोंकी आवश्यकता है वैसे स्त्रियों को अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये पुरुषोंकी आवश्यकता है। दोनों अपने जीवनकी उत्कृष्टता प्राप्त कर सकें दोनों अपने जीवनको सार्थक और सफल बना सकें, दोनों अपने जीवनमें महान् आदर्श उपस्थित कर सकें, इसीलिये एक दूसरेका जन्म हुआ। ऐसी हालतमें यह समझना भयंकर भूल है कि स्त्रियाँ पुरुषोंकी गुलाम हैं, दासी हैं, सेविका हैं और उनके ऐशो-आराम और सांसारिक क्षुद्र सुखोपभोगके लिये पैदा हुई हैं।

—❀—

दीपक के प्रति

तुम अन्धकार को हरने,
जीवन-घट भरने आये।
या इस निराश जीवन में,
आशा के झरने लाये॥
प्रेमी पर बलि हो जाना,
परवानों को सिखलाया।
सच्चा गुरू बन कर पहले;
तन अपना अहो जलाया॥

सूरज को तुमसे ज्यादह,
तेजस्वी कैसे मानें।
वह अन्त तेज का, तुमको,
प्रारम्भ तेज का जानें॥
यदि मौत खड़ी हो आगे,
क्या बात भला है ग़म की।
देखो, इस दीप-शिखा को,
जलकर सोने सी चमकी॥

प्याले का मधु पी करके,
तुम हँसते अजब हँसी हो।
कैसे हँसना है भाता?
जब देह कहीं झुलसी हो॥
"विघ्नों की आँधी में भी,
हँसना सीखो तुम प्राणी।"
यह शिक्षा देते सब को,
दीपक! तुम पूरे ज्ञानी॥

तुम धीर तपस्वी बनकर,
चुपचाप जले जाते हो।
या मूल्य मूक सेवा का,
सचमुच तुम प्रगटाते हो॥
किस्मत में तेरी दीपक,
क्या जलना ही जलना है।
या पर हित जलने में ही—
सुख का अनुभव करना है॥

परहित सर्वस्व लुटाते,
जग कहता तुम्हें दिवाना।
पर तुमने ही रातों को—
है दिवस बनाना जाना॥
दीपक की नहीं शिखा यह,
है बीज क्रांति का प्यारा।
जो बढ़कर जला सकेगा,
जुल्मों का जङ्गल सारा॥

है तेल जहाँ तक बाक़ी,
तब तक तुम जले चलोगे।
तनमें ताक़त है जब तक,
परहित में बढ़े चलोगे॥
आँधी का झोका आकर,
चाहे तो तुम्हें बुझादे।
पर जीते हुए तुम्हारे,
प्रण को कैसे तुड़वादे॥

२०—श्री रामकुमार 'स्नातक'

हे दीपदेव! भारत के आँगन में खुलकर चमको।
जीने, मरने का सच्चा कुछ भेद बतादो हमको॥
हम अपने लघु जीवन का कुछ मूल्य आँकना सीखें।
मरने में जीवन-झाँकी का दृश्य झाँकना सीखें॥

'दीपकसे'

आत्मोद्धार-विचार

[ले०—श्री० अमृतलाल चंचल]

शिष्यने कहा "गुरुदेव! लाखों करोड़ों वर्ष होगये मुझे इस संसार-सागरमें अवरत भटकते और गोते खाते हुए! अब तो कृपाकर कोई ऐसा मार्ग बताइये, जिसका अवलम्बन कर मैं इस जन्म-मरणके विकराल बंधनसे मुक्ति पा सकूँ—छुटकारा पा सकूँ!" परमदयालु जगत-हितकारी श्री गुरु कहते हैं—

सद्गुरु कहे स्वस्वरूपण जाण,
एटले तारुं जन्म टलशे ए प्रमाण।
तारा जन्म-मरण नो कागल फाटे,
सद्गुरु वचने विश्वास सखे ए माटे।

अर्थात् हे मुमुक्षु! तू अपना स्वतः का रूप जान, अर्थात् मैं स्वयं सच्चिदानन्द रूप हूँ, देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि इन सबका साक्षी ऐसा प्रत्यगात्मा हूँ; देहान्द्रियादिक जितनी ये बाह्य वस्तुएँ हैं, उनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है; देहका वर्णाश्रमादिक धर्म व इन्द्रियोंका आंध्यबधिरतादिक धर्म ये दोनों ही मेरे स्वरूपसे पूर्ण असम्बन्धित बातें हैं; मैं तो केवल शुद्ध चैतन्य रूप हूँ, ऐसा ज्ञान जिस समय भी तुझमें पूर्णरूपेण दृढ़ हो जायगा, तू उसी वक्त जन्म-मरणके पाशसे छुटकारा पाकर स्वयं ज्योतिर्मय रूप परम-ब्रह्म परमात्मा हो जायगा। मनुष्य को भव भवमें भटकाने वाले हेतु उसके द्वारा उपार्जित उसके अशुभ कर्म ही हैं। जिस समय तू सद्गुणके वचनों पर विश्वास करके 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'मैं स्वयं ब्रह्मरूप हूँ' ऐसा ध्यान करेगा, तेरे आत्मासे अशुभ कर्मोंकी बेड़ी कट जायगी; तेरी जन्म-मरणको देने वाली ललाट-पत्रिकाके चिन्दे चिन्दे हो जायेंगे और तू उसी समय संसार सिन्धुसे पार होकर जीवन-मरण से मुक्त हो जायगा।

वास्तवमें आत्म-चिन्तवन या आत्म-श्रद्धान ही एक ऐसी वस्तु है, जिसका आश्रय लेकर मनुष्य इस अगाध-संसार-सागरसे पार हो सकता है। क्यों? इसीलिये कि जिसे हम परमात्मा कहते हैं, वह हमारे आत्मा ही का एक दूसरा रूप है। हमने अपने स्वरूपको न जाना, इससे हम 'हम' बने रहे और परमात्मा जान गया इससे वह 'परमात्मा' हो गया। परमात्मा बैठे थे, एक अल्हड़ पूछ बैठा—आखिर हममें और तुममें भेद किस बात का है जो हम तो साधारण मनुष्य बने रहे और आप परमात्मा बन बैठे? परमेश्वर ने कहा—

तुम्हारे और मेरे में न कुछ भी भेद है बाबा!
न जाना भेद बस तुमने यही इक खेद है बाबा।

यही बात है! हम संसारके माया मोह और विषय कषायोंमें इस तरह फँसे हुए है कि हम अपने शरीर को ही अपना आत्मा मान बैठे हैं

और दिन रात उसीकी सेवा-शुश्रुषा किया करते हैं। इससे हमारे आत्माको मिथ्यात्वका बंध होता है और यही मिथ्यात्व उसे अपना स्वरूप जानने देनेमें प्रतिपल बाधक होता रहता है। एक तो हुई यह बात, दूसरे हमारा आत्मा, जो स्फटिक मणि के समान शुभ और स्वर्गकी नदीके जलके समान पवित्र है, अनादि कर्म मलसे मलिन और उसके मोटे पटलसे इस तरह आच्छादित हो रहा है कि उसके दर्पणमें हमें अपना स्वरूप बिल्कुल भी नहीं दिखाई देता है, वरना, जो परमात्मा है वही हम हैं और जो हम हैं, वही परमात्मा है। परमात्मा ज्ञानका भंडार है; हम भी अतुल ज्ञानके समुद्र हैं, परमात्मा शक्तिका खज़ाना है, हम भी असीम वीर्यके निधान हैं, अजर, अमर, अविनाशी है, हम भी जरा, जन्म और मरण रहित शुद्ध बुद्ध परमात्मा हैं, पर इतना होने पर भी हम कुछ नहीं हैं और अगर हैं भी तो एक जघन्यतम श्रेणीके बहिरात्मा। ख्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं—

फाश भी गोयमो अज़ गुफ़्त-ए-खुद दिल शादम।
बंदा-ए-इश्क़ मो अज़ हर दो जहां आज़ादम॥
कौकबे—बख़्त मरा हेच मुनज्जिम न शिनाख़्त।
या रब! अज़ मादरे-गेती बचेः तालां ज़ादम॥
ताषरे-गुलशने—कुदसुम चे दिहम शर्हे-फ़िराक़।
कि दरी दामे-गहे-हादसा चूँ उफ्तादम॥

(मैं खुल्लमखुल्ला कहता हूँ और अपने इस कथनसे प्रसन्न हूँ कि मैं इश्क़का बन्दा हूँ और साथ ही लोक और परलोक दोनोंके बंधनोंसे मुक्त हूँ। मेरी जन्मपत्रीके ग्रहोंका फल कोई भी ज्योतिषी न बता सका। हे ईश्वर! सृष्टि माताने मुझे कैसे गृहोंमें उत्पन्न किया है! मैं स्वर्गके उद्यानका पक्षी हूँ! मैं अपने वियोगका हाल क्या बताऊँ कि मैं इस मृत्युलोकके जालमें कैसे आ फँसा!!)

जैसे ही हमारा यह आत्मा अपनी आत्मनिधिकी सुध पाकर, धातुभेदीके सदृश प्रशस्त ध्यानाग्निके बलसे "मैं ही ब्रह्म हूँ—मैं ही शुद्ध;बुद्ध मुक्तस्वभाव, प्रकृत, अदृश्य, सर्वान्तवर्ती, अद्वितीय आनन्दसागर, निराकार और निर्विकल्प परमात्मा हूँ," इस तरहके ध्यानमें आरूढ़ हो जायेगा, हमारे समस्त कर्म मल क्षय हो जायेंगे, हमारी सम्पूर्ण स्वाभाविक शक्तियाँ सर्वतोभावसे विकसित हो जायेंगी और तैसे ही हम स्वच्छ तथा निर्मल स्थितिको प्राप्तकर परमानन्द परमात्मा हो जायेंगे।

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके,
चामीकरत्व मचिरादिव धातुभेदाः।

—श्रीमद्कुमुदचन्द्राचार्य

आत्माके स्वरूपका चिन्तवन ही परमात्माका एकमात्र जगतप्रसिद्ध आराधन है। श्रीपूज्यपाद स्वामी 'समाधितंत्रमें कहते हैं—

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्वं परमात्मनः।

"सर्व इन्द्रियोंको अपने अपने विषयोंमें जाते हुए रोक कर स्थिरीभूत मनसे क्षणमात्र भी अनुभव करने वालेके जो स्वरूप झलकता है, सो ही परमात्माका स्वरूप है।" इससे पता चलता है

कि परमात्मा और आत्मामें सिर्फ नाम मात्रका—दृष्टि मात्रका फर्क है। बक़ौल नाथ सा०—

इक नज़र का है बदलना, और इस जा कुछ नहीं।
दरमियाने—मौजो क़तरा ग़ैरे—दरिया कुछ नहीं।

'यहाँ और कुछ नहीं, केवल एक दृष्टि-मात्रका बदलना है। बूंद और लहरमें कोई भेद नहीं, दोनों नदीसे भिन्न और कोई वस्तु नहीं।"

प्रातः स्मर्णीय आचार्य देवसेनजी 'तत्वसार' में अपने शुद्धस्वरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं—

जस्स ण कोहो माणो माया लोहो ण सल्ल लेस्साओ।
जाई जरा मरणं वि य णिरंजणो सो अहं भणिओ'॥१९॥
णत्थि कलासंठाणं मग्गणगुणठाणजीवठाणाणि।
णय लद्धिबंधठाणा णोदयठाणाइया केई॥२०॥
फास-रस-रूव-गंधा सद्दादीया य जस्स णत्थि पुणो।
सुद्धो चेयण भावो णिरंजणो सो अहं भणिओ॥२१॥
मलरहिओ णाणमओ णिवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो परमोवंभो मुणेयव्वो॥ २६॥
णोकम्म-कम्म रहिओ केवलणाणाइगुणसमिद्धो जो।
सोहं सिद्धो सुद्धो णिच्चो एक्को णिरालंबोक॥ २७॥
सिद्धोहं सुद्धोहं अणन्तणाणाइगुणसमिद्धोहं।
देहपमाणो णिच्चो असंखदेसो अमुत्तो य॥ २८॥

जिसके न क्रोध है, न मान है, न माया है, न लोभ है, न शल्य है, न लेश्या है, न जन्म है, न जरा है, न मरण है, वही निरंजन कहा गया है, सोही मैं हूँ। १९।

न जिसके औदारिकादि पाँच शरीर है; न समचतुरसादि ६ संस्थान हैं; न गति, इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणा हैं; न मिथ्यात्वादि चौदह गुणस्थान हैं; न जीवस्थान अर्थात् एकेन्द्रियादि चौदह जीवसमास हैं; न कर्मोंके क्षयोपशमसे होने वाले लब्धिस्थान हैं, न कर्मोंके बंधस्थान हैं; न कोई उदयस्थान है; न जिसके कोई स्पर्श, रस गंध, वर्ण शब्द आदि हैं, परन्तु जो चैतन्य स्वरूप है सो ही निरंजन मैं हूँ। २०। २१।

कर्मादि मलसे रहित ज्ञानमयी सिद्ध भगवान जैसे सिद्ध क्षेत्रमें निवास करते हैं, वैसे ही मेरी देह में स्थत परमब्रह्मको समझना चाहिए। २६।

जो नो कर्म और कर्मसे रहित, केवलज्ञानादि गुणोंसे पूर्ण शुद्ध, अविनाशी, एक, आलम्बन-रहित, स्वाधीन, सिद्ध भगवान हैं, सो ही मैं हूँ।२७

मैं ही सिद्ध हूँ, शुद्ध हूं, अनन्त ज्ञानादि गुणों से पूर्ण हूँ, अमूर्तीक हूँ, नित्य हूँ, असख्यातप्रदेशी हूँ और देहप्रमाण हूँ, इस तरह अपनी आत्माको सिद्धके समान वस्तुस्वरूपकी अपेक्षा जानना चाहिये। २८।

अब जब आत्माकी परम स्वच्छ और निर्मल अवस्थाका नाम ही परमात्मा है और उस अवस्था को प्राप्त करना, अर्थात् परमात्मा बनना ही सब आत्माओंका अभीष्ट है तब आत्मस्वरूपका ही चिन्तवन करना हमारा एक मात्र कर्तव्य है। पूज्यपाद स्वामीजी कहते हैं—

यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयो पास्यो नान्यः कश्चिदितिस्थितिः॥

अर्थात् जो कोई प्रसिद्ध उत्कृष्ट आत्मा या परमात्मा है वह ही मैं हूँ तथा जो कोई स्वसंवेदन-गोचर मैं आत्मा हूँ सो ही परमात्मा है, इसलिये जब कि परमात्मा और मैं एक ही हूँ, तब मेरे द्वारा मैं ही आराधन योग्य हूँ, कोई दूसरा नहीं।

हैदराबाद निवासी ब्रह्मनिष्ठ श्रीराम गुरु कहते हैं—

जेने तुं कहे छे देव, ते तुं चैतन्य स्वयमेव।
बीजो देव माने जे कोई, एज बन्धन तेने होई॥

अर्थात जिसको तू देव, चैतन्य, स्वयंप्रकाश आदि नाना नामोंसे पुकारता है, वह चैतन्यरूप देव तू स्वयं ही है। चैतन्य रूप देव तो मेरे आत्मा के सिवा कोई दूसरा ही है, ऐसा जो कोई मानता है, वह अज्ञानका बंदी होता है, ऐसा समझना चाहिये।

श्रीमद्गुरु तारण तरण स्वामीजी महाराज भी अपने 'पण्डित पूजा' नामक ग्रंथमें कहते हैं—

आतम ही है देव निरंजन,
आतम ही सद्गुण भाई।
आतम तीर्थ धर्म आतम ही
तीर्थ आत्म ही सुखदाई।
आतमके पवित्र जलसे ही,
करना अवगाहन सुखधाम
यही एक गुरु, देव, धर्म, श्रुत
और तीर्थको सतत प्रणाम।

—हिन्दी टीका 'तारनत्रिवेणी'

ग्रंथश्रेष्ठ श्री बृहदारण्यकोपनिषद्, आत्मा क्या है और उसका क्या महत्व है, इस विषय पर बड़ी सूक्ष्मतासे विवेचन करता है। एक स्थल पर वह कहता है—

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासि तव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्याविज्ञाने नेद ँ सर्वं विदितम्।

अर्थात हे मैत्रेयी! आत्मा ही देखने, सुनने, भजन और निदिध्यास करने योग्य है, जिसे देखने, सुनने, समझने और अनुभव करनेसे सब कुछ जाना जाता है।

अब प्रश्न होता है कि हम अपने आत्माका चिन्तवन किस तरहसे करें, क्योंकि न तो हमें आत्मा दिखाई ही देता है और कहते हैं कि न उसका कुछ रूप ही है? यदि हम इस तरहसे चिन्तवन करते हैं कि 'अहं ब्रह्मास्मि' 'सोऽहम्' या 'एकोऽहं निर्मलः शुद्धो' तो हममें अहंकारका-सा समावेश होता है और आत्म-साधनाकी जगह अहंकारका आना ठीक "भांजर काढून टाकलें तेथें ऊंट येऊन पड़ला" वाली मराठी कहावत होती है?

श्रीमद्परमहंस पारिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ श्री जयेन्द्रपुरीजी महाराज मंडलेश्वर इस विषय पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। वे कहते हैं—

"साधको! भावना करो मैं देह नहीं हूँ, एवं इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि भी नहीं हूँ; अल्प परिच्छिन्न नहीं हूं, किन्तु सर्वान्तर्यामी साक्षी ब्रह्म ही मैं हूँ। 'अहं ब्रह्मास्मि' 'सोऽहं' 'ॐ' इस गुरु मंत्रको हर वक्त अपने सामने रखो। इस मंत्रको एक बार समझकर अलंबुद्धि मत करो। बार बार इसके असली तत्वका अनुसंधान करो। यही भगवानकी असली पूजा है।

जैसा कि स्वामीजी बताते हैं "बार बार इसके असली तत्वका अनुसंधान करो" इस वाक्यांशसे हमें पूर्णरूपेण प्रकट होजाता है कि 'अहं ब्रह्मास्मि, या ऐसे ही दूसरे पद अहंताद्योतक नहीं है, वरन उनमें कुछ महत्वपूर्ण रहस्य छिपा हुआ है। अपना आत्मचिन्तवन करते समय प्रत्येक मनुष्य

का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह सिर्फ लिये हुए पदके शब्दोंके अर्थको जानने तक ही सीमित नहीं रहे, वरन् उसमें क्या रहस्य भरा हुआ है, इसका सबसे प्रथम मनन करनेका प्रयत्न करे। जैसे जैसे वह उस रहस्यकी तलीमें पहुँचता जावेगा, उसे ज्ञात होगा कि तैसे २ मैं प्रतिक्षण एक उत्तरोत्तर और अपूर्व आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ। वास्तवमें आत्म-मनन वस्तु ही ऐसी है! एक महात्मा कहते हैं—

परम ब्रह्ममें जब रत होता
मन-मधुकर मतवाला,
सत्, चित्, आनन्दसे भर उठता,
अन्तरतमका प्याला!
ज्ञानी चेतन ज्ञान-कुण्डमें,
खाता फिर फिर गोते;
मलिन भाव और अशुभ कर्मबत
पल पलमें क्षय होते।

लोग सांसारिक श्रमजाल और मिथ्यान्धकार-में फँसकर पागल हो रहे हैं, वरना मुक्तिका एक मात्र अमोघ और सरलसे सरल साधन प्रत्येक पुरुषका आत्मा तो उसके घटसे बाहिर सिर निकाल निकालकर अपने हाथोंके इशारेसे उसको उच्च स्वरमें बुला बुला कर कह रहा है—

बयाँ ऐ शेख़! दर ख़ुमख़ानए मा।
शराबे-ख़ुर कि दर कौसर न बाशद!
ख्वाज़ा हाफ़िज़

(ऐ शेख़! यहां मेरे शराबख़ानेमें आ और उस मदिराका पानकर जो कि स्वर्गमें भी दुर्लभ है!)

सफेद पत्थर अथवा लाल हृदय

एक प्रसिद्ध कालेज में एक प्रख्यात प्रोफेसर रहते थे। उनके पासके नगरके मुख्य व्यक्तियोंका एक डेपूटेशन आया, किसी धर्मस्थानके आँगनमें सङ्ग-मरमर लगानेके लिए चन्दा लेने! प्रोफेसर साहेबने पूछा:—

"पहले भी काम चलता ही जा रहा है सङ्ग-मरमरकी क्या ज़रूरत है?"

डेपूटेशनने उत्तर दिया कि एक तो साधरण चबूतरेका फर्श सुन्दर मालूम नहीं होता, दूसरे जनताके पाँव खराब हो जाते हैं।

"आप पहले जनताको तो सुन्दर बना लें" प्रोफेसर साहेबने अहसास भरे शब्दोंमें कहा—"जिस जनताको धूप और वर्षामें नंगे पाँव चलना फिरना पड़ता है, जिस जनताके अनेक सदस्योंको पेट भर कर रोटी नहीं मिलती, उसकी रूखी सूखी रोटी छीन कर, हृदयोंका रक्त निचोड़ कर, आप उन्हें सफेद पत्थर सा बना रहे हैं; यदि आप मुझसे पूछते हैं तो जहाँ जहाँ संग-मरमर लगा हुआ है, उसे बेचकर उसका अनाज लेकर भूखी जनताका पेट आपको भरना चाहिए।" (दीपकसे)

नृपतुंगका मतविचार

[लेखक—श्री एम. गोविन्द पै]

[इस लेखके लेखक श्री एम. गोविन्द पै मद्रास प्रान्तीय दक्षिणकनाड़ा ज़िलान्तर्गत मंजेश्वर नगरके एक प्रसिद्ध विद्वान् हैं। आप कनड़ी, संस्कृत तथा अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओंके पंडित हैं और पुरातत्त्व विषयके प्रेमी होनेके साथ-साथ अच्छे रिसर्चस्कॉलर हैं। जैनग्रन्थोंका भी आपने कितना ही अध्ययन किया है। 'अनेकान्त' पत्रके आप बड़े ही प्रेमी पाठक रहे हैं। एक बार इसके विषयमें आपने अपने महत्वके हृदयोद्गार संस्कृत पद्योंमें लिखकर भेजे थे, जिन्हें प्रथम वर्षके अनेकान्तकी ५वीं किरणमें प्रकट किया गया था। आपके गवेषणापूर्ण लेख अक्सर अंग्रेजी तथा कनड़ी जैसी भाषाओंके पत्रोंमें निकला करते हैं। यह लेख भी मूलतः कनड़ी भाषामें ही लिखा गया है और आजसे कोई बारह वर्ष पहले बेंगलूरकी 'कर्णाटक-साहित्य-परिषत्पत्रिका' में प्रकाशित हुआ था। लेखक महाशयने उक्त पत्रिकामें मुद्रित लेखकी एक कापी मुझे भेंट की थी और मैंने मा० वर्द्धमान हेगडेसे उसका हिन्दी अनुवाद कराया था। अनुवादमें कुछ त्रुटियां रहनेके कारण बादको प्रोफेसर ए. एन. उपाध्याय एम. ए. के सहयोगसे उनका संशोधन किया गया। इस तरह पर यह अनुवाद प्रस्तुत हुआ, जिसे 'अनेकान्त' के दूसरे वर्षमें ही पाठकों के सामने रख देनेका मेरा विचार था; परन्तु अबतक इसके लिये अवसर न मिल सका। अतः आज इसे अनेकान्तके पाठकोंकी सेवामें उपस्थित किया जाता है। इस लेखमें विद्वानोंके लिये कितनी ही विचारकी सामग्री भरी हुई है और अनेक विवादापन्न विषय उपस्थित किये गये हैं; जैसे कि नृपतुंग नामक प्रथम अमोघवर्ष राजाका मत क्या था? वह जिनसेनादिके द्वारा जैनी हुआ या कि नहीं? राज्य छोड़ कर उसने जिनदीक्षा ली या कि नहीं? और प्रश्नोत्तररत्नमाला जैसे ग्रंथ उसीके रचे हुए हैं या किसी अन्यके? विचारके लिये विषय भी अच्छे तथा रोचक हैं। आशा है इतिहासके प्रेमी सभी विद्वान् इस लेख पर विचार करनेका कष्ट उठाएँगे और अपने विचारको—चाहे वह अनुकूल हो या प्रतिकूल—युक्तिके साथ प्रकट करनेकी ज़रूर कृपा करेंगे, जिससे लेखके मूल विषय पर अधिक प्रकाश पड़ सके और वस्तु स्थितिका ठीक निर्णय हो सके। जैन विद्वानोंको इस ओर और भी अधिकताके साथ ध्यान देना चाहिये।—सम्पादक]

नृपतुंग, अमोघवर्ष, इत्यादि अनेक उपाधियों अथवा गौण नामोंसे युक्त 'शर्व' नामका राष्ट्रकूट-वंशज नरेश दिगम्बर जैनाचार्य श्री जिनसेनसूरि से जैनधर्मका उपदेश पाकर जैनी होगया, इस प्रकार बहुतसे विद्वानोंकी राय है। परन्तु इस विषयको समर्थन करने वाले सभी आधार मेरे विचारसे निर्बल मालूम पड़ते हैं। मैं अपने आक्षेपोंको सबके सामने रखता हूँ और इस

विषयमें विशेष जानने वालोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे इस संबन्धमें विशेष तर्क-वितर्क करके यथार्थ बातका निश्चय करें।

सबसे पहिले राष्ट्रकूटवंशका संक्षिप्त परिचय दिये बिना तथा श्रीजिनसेनाचार्य और उनका समय निर्णयके संबन्धमें थोड़ा-बहुत कहे बिना आगे चलने पर समझनेमें दिक्कत पड़ेगी। अतः इन दोनों विषयोंको पहिले कह कर पश्चात् इस लेखके मुख्यांश पर विचार किया जाना चाहिये।

राष्ट्रकूटवंश

इस वंशके बहुतसे राजाओंके नामोंसे सबसे पहिले 'गोविन्द' नामक नरेश हुआ यह बात मालूम पड़ने पर भी, 'एलूर-गुफा (Caves of Ellora) के 'दशावतार-देवालय' के एक शिलालेखमें गोविन्दके पूर्वज 'दन्तिवर्म तथा 'इन्द्रराज' इन दोनोंका नाम रहनेसे * तथा प्राचीन लेखमालाके लेख नं० ६, ९, १३३, और १५६ में कही हुई वंशावलीमें भी उनके नाम रहनेसे उस दन्तिवर्मसे ही वंशावलीका दिखाना योग्य समझकर वैसा किया गया है। चूंकि इनमेंसे तीसरे 'गोविन्द' नामक नरेशने (ई० सन् ७९४-८१४) 'मही' और 'तापी' (तापती) के मध्यवर्ती 'लाट' (या 'लाल' अर्थात् गुजरात) देशको वहाँके राजासे जीतकर उसे अपने छोटे भाई (तृतीय) 'इन्द्र' को दे दिया और उसे वहाँका राजा नियुक्त कर दिया‡। इससे यह विभक्त होकर इसकी प्रधान शाखा 'दक्षिण-राष्ट्रकूटवंश' नामसे और गौण शाखा 'गुजरात-राष्ट्रकूट' नामसे प्रसिद्ध हुई।

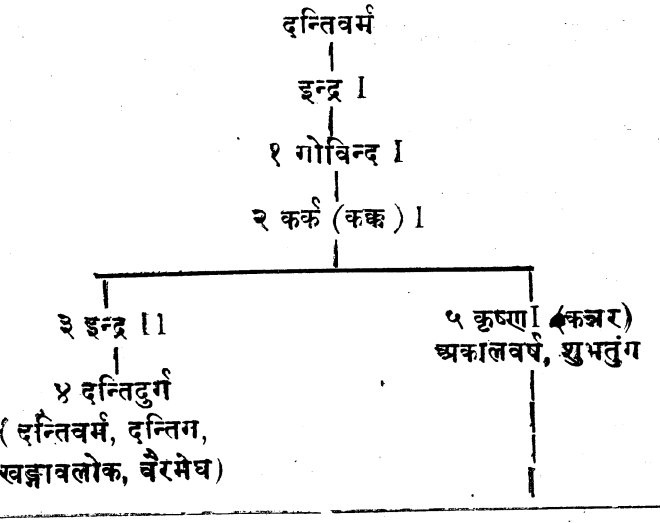

* E. H. D. Pg. 47.

‡ लाटीयं मंडलं यस्पतव इव निजस्वामि (निजभ्रात्रा) दत्तं रराज ॥ (प्रा० ले० मा० नं० ४)
भ्राता तु तस्य (गोविन्दस्य) ·····इन्द्रराजः ।
शास्ता बभूवादभुतकीर्तिसूतिस्तदत्तलाटेश्वरमंडलस्य ॥
(प्रा० ले० मा० नं० ५)

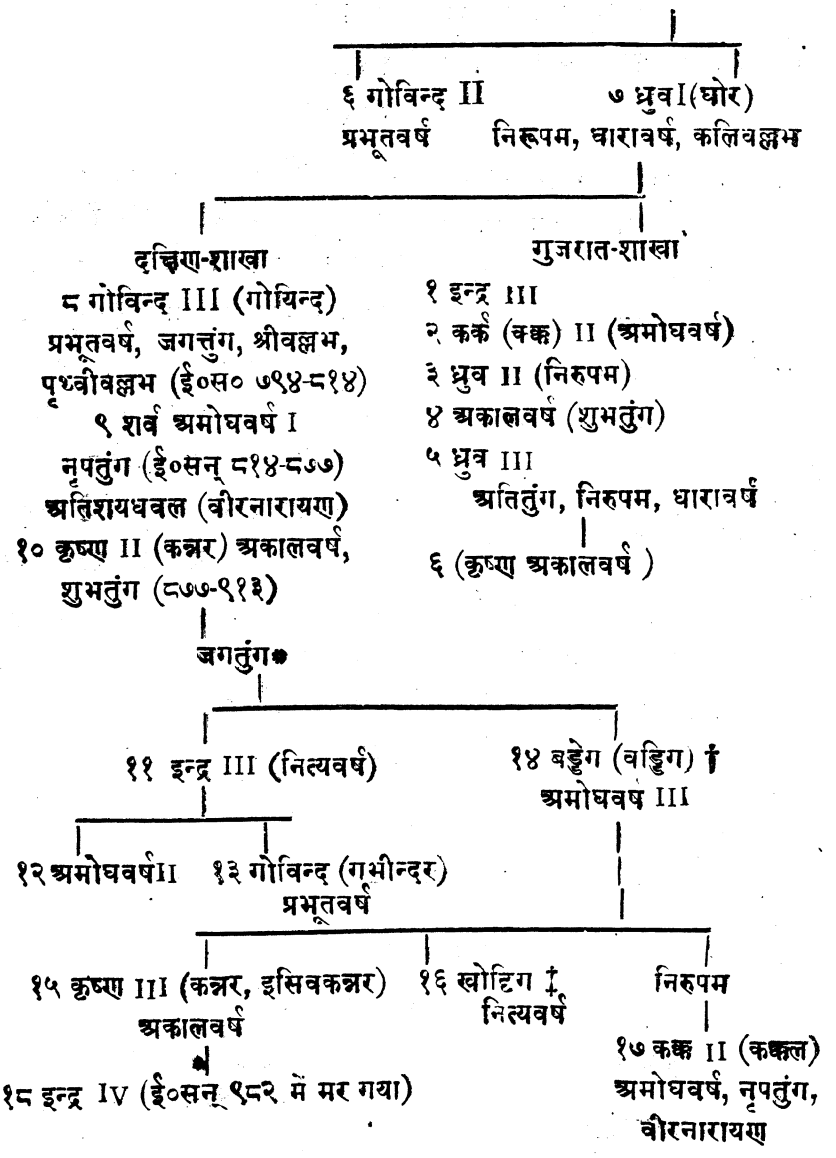

* यह 'अलब्ध राज्यः सदिवं विनिन्ये……धात्रा' (प्रा०ले०मा०नं० १३३ और १५६) इस वाक्यके अनुसार पट्टाभिषेकके पहिले ही मर गया मालूम पड़ता है।

† बड्डेग (वड्डिग)-यह बहुशः कर्नाटक भाषाका नाम ही मालूम पड़ता है। "बर्देन्दु प्रौढी"। (शब्द-मणिदर्पण) से बने हुए 'बर्देग, (=प्रौढ) का रूपान्तर होगा ? 'पंप-भारत' में (१-२३ इत्यादि) 'बहेग' यह नाम है।

‡ खोट्टिग (कोट्टिग) संभवतः कन्नड शब्द होगा। यह बहुशः 'कोट्टु' (=किरीट) से शायद 'कोट्टिग' (=किरीट) अर्थात् 'नरेश' (अथवा 'अर्जुन') इस प्रकारका अर्थ हुआ होगा।

ये राष्ट्रकूट चन्द्रवंशके यदुकुल वाले हैं, ऐसा उनके निम्न लेखोंसे मालूम पड़ता है :—

(१) ई० सन् ९३३ के शासनमें—

वंशः सोमादयं.....

वंशो बभूव भुवि सिन्धुनिभो यदूनाम् ।

(प्रा० ले० मा० नं० १)

(२) ई० सन् ९३७ के चित्रदुर्ग नं० ७६ के शासन में—

.....यादवरातनन्वजर् ॥

यादवकुलदोलपलरुं ।

मेदिनियं सुखदिनालदरवरिं बलियं ॥

श्रीदसन्दन्तिगन् .....(E. C. Vol XI)

उस यदुवंशके सात्यकी वर्गके लोग ही हैं, यह बात उनके कुछ शासनोंमें पाई जाती है।

ई० सं० ९४० के—

उद्वृत्तदैत्यकुलकंदलशान्तिहेतु—

स्तत्रावतारमकरोत् पुरुषः पुराणः ॥

तद्वंशजा जगति सात्यकिवर्गभाज—

स्तुंगा इति क्षितिभुजः प्रथिता बभूवुः ॥

(प्रा० ले० मा० नं० १५६)

इसी श्लोकका उत्तरार्ध इनके ई० सं० ९५९ के शासनमें एक और रीति से इस प्रकार है—

तद्वंशजाः जगति तुंगयशः प्रभावा—

स्तुंगा इति क्षितिभुजः प्रथिता बभूवुः

(प्रा० ले० मा० नं० १३३)

इससे इन नरेशोंके नामोंमें (अर्थात इनके गौण नामों में) 'तुंग' इस पर-पदके रहनेका क्या कारण है सो मालूम पड़ता है। इसी तरहसे इनमें से ज्यादा कम सबको 'वर्ष' इस परपदका व्यपदेश है इस पर ध्यान देना चाहिये।

इन नरेशोंमें प्रत्येक नरेशके नामधेयोंमें तथा गौण नामोंमें एक तरहका परंपरा और क्रमबद्ध संबन्ध है यह तो भूलना नहीं चाहिये; जैसे कि इनके 'गोविन्द' नामवालेको 'जगतुंग' और 'प्रभूतवर्ष' इस प्रकारका गौण नाम है, 'कृष्ण' (कन्नर) नाम वालेको 'शुभतुंग' और 'अकालवर्ष' इस प्रकारका विशेष नाम है; 'ध्रुव' (घोर) नाम वालोंको 'निरुपम' और धारावर्ष ऐसा व्यपदेश है, 'कर्क' (कक्क) नामके व्यक्तियोंको 'नृपतुंग' और 'अमोघवर्ष' ऐसी उपाधि है।

इस कारणसे यह एक साकूत (सार्थक) अनुमान होता है कि इस वंशावलीके, 'ध्रुव', नामक नरेशोंमें 'तुंग' यह परपदयुक्त गौण नाम नहीं देखा जानेसे* अब तक मिले हुए उनके शासनादिकोंमें वह न मिला इतना ही कह सकते हैं, परन्तु उनको 'तुंग' यह परपदान्वित नाम भी होगा, इस प्रकार कह सकते हैं †। वैसे ही हमारे इस लेखके नायक नृपतुंगके 'नृपतुंग' 'अमोघवर्ष' इस प्रकारके गौण नामोंका परिशीलन करने पर मालूम पड़ता है कि उसका नामधेय 'शर्व' इतना

* इस राष्ट्रकूटवंशके गुजरात शाखाके दूसरे 'ध्रुव' को 'अतितुंग' ऐसा नाम भी था ('शुभतुंगजोतितुंग... प्रा० ले० मा० नं० ४)। उस नामके और नरेशोंको भी वहीं नाम रहा होगा।

† श्रवणबेलगुलके नं० ६७ के शासन (E.C. Vol. II) में 'राजन् साहसतुंग सन्ति बहवः श्वेतातपत्रा नृपाः।' ऐसा लेख है। इस 'साहसतुंग' नामका नरेश राष्ट्रकूट वंशीय 'दन्तिदुर्ग' होना चाहिये, ऐसा उन शासनोंके उपोद्घातमें (०४८) कहा है।

ही नहीं किन्तु इसी उपाधियुक्त इस वंशके उभय शाखाओंके अन्य नरेशोंके सदृश इसको भी 'कर्क'(कक्क) ऐसा नाम होगा।(कर्क)यानी श्वेताश्व ('कर्कः श्वेताश्वे·····--) या 'श्वेत' ऐसा अर्थ है। उसका उपाधि-अन्तर्गत 'अतिशय धवल' यह नाम भले प्रकार दिखाई देनेसे हमारा यह ऊहापोह निराधार नहीं है।

इस नृपतुंग (अमोघवर्ष) के और भी अनेक नाम या उपाधियाँ थीं, यह बात कर्नाटक 'कविराजमार्ग' से तथा इसके शासनसे भी मालूम पड़ती है :--

(१) शर्व--ई० सन् ८६७के शासनमें.(प्रा०ले० मा० नं० ४)

श्रीमहाराजशर्वाख्यः ख्यातो राजाभवद्गुणैः ।
अर्थिषु यथार्थतां यः सममीष्टफलाप्तिलब्धतोषेषु ॥
वृद्धिं निनाय परमाममोघवर्षाभिधानस्य ॥

(२) नृपतुंग--कविराजमार्ग I ४४, १४६; II. ४२, ९८, १०५; III ९८, १०७, २०७, २१९, २३० और प्राचीन लेखमाला लेख नं० १३२ और १५६ आदि।

(३) अमोघवर्ष--कविराज मार्ग III १, २१७ आदि।

(४) अतिशयधवल--क० मा० I. ५, २४, १४७; II. २७, ५३, १५१; III ११, १०६।

(५) वीरनारायण--क० मा० I १०२, III १८०। इसके नीचे दिये जाने वाले इसके समयके एक शासनमें इसे 'कीर्तिनारायण' ऐसा कहा है।

शब्दमणिदर्पणमें उद्धृत कन्द पद्यमें कहा गया नृपतुंग यही होगा तो उसे वहां 'केरदु वोत्तरदेवं' ऐसा कहा जानेसे वह एक उसकी उपाधि मालूम पड़ती है। (शब्दमणिदर्पण Mangalore १८९९ पृ० १७१)

इन नामोंके सिवाय इसे 'नरलोकचन्द्र' (क० मा० I २३) 'नीतिनिरन्तर' (II ९१)(कृतकृत्यमल्ल) वल्लभ' (१६१) 'विजयप्रभूत' (I. १४९, II १५३, III २३६, 'सरस्वतीतीर्थावतार' III २२५) और 'ग्रन्थान्त्य गद्य ऐसी उपाधियाँ थी, ऐसा मालम पड़ता है।

इस वंशके नरेशोंके शासनोंमें देवतास्तुति सम्बन्धी अवतारिकापद्य इस प्रकार हैं--

(१) सवोव्याद्वेधसा धाम वन्नाभिकमलं कृतम्।
हरश्च यस्य कान्तेदुकलया कमलंकृतम् *॥

यह हरिहर-स्तुति-सम्बन्धी श्लोक है; यह श्लोक ही इनके बहुतसे शासनोंमें मिलता है—

(२) जयन्ति ब्राह्मणः सर्गनिष्पत्तिमुदितात्मनः ।
सरस्वती कृतानन्दा मधुराः सामगीतयः ‡ ॥

(३) श्रीमरस्कन्युमाभास्वद्वल्लीसंश्लेषभूषितम्।
भूतये भवतां भूयादज्ञकल्पतरुत्रयम् † ॥

---

* प्रा० ले० मा० नं० ४, ५, ७८ और I. A. Vol XII. pp. 158, 181, 218.

दूसरी पंक्तिमें 'कम्+अलंकृतम्' इस प्रकार सन्धि कर लेना चाहिये। ('कं+शीर्षे' हेमचन्द्रका 'अनेकार्थ-संग्रह' ५ कम्=तले') इस प्रकारके अनेक पद्य संस्कृत काव्योंमें हैं। माघ कविके 'शिशुपालवध' काव्यके १६ वें सर्गमें बहुतसे हैं। उदाहरणार्थ—

तस्यावदानैः समरे सहसा रोमहर्षिभिः।
सुरैरशंसि व्योमस्थैः सह सारो महर्षिभिः ॥११॥

‡ प्रा० ले०मा० नं०६ और I. A. Vol. XII P. 249

† प्रा० ले० मा० नं०६ और I. A., P. 264.

(४) सनयति जगदुत्सवप्रवेशप्रथनपरः करपल्लवो मुरारेः।
लसदमृतपयः कणाकलक्ष्मीस्तनकलशाननलब्धसन्निवेशः॥
जयति च गिरिजाकपोलबिम्बा-
दधिगतपत्त्रविचित्रिता स भित्तिः।
त्रिपुरविजयिनः प्रियोपरोधाद्धृत-
मदनाभयदानशासनेव ॥

(५) नमस्तुंगशिरश्चुंबिचन्द्रचामरचारवे।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शंभवे † ॥ इत्यादि

इनके अनेक शासनोंमें किसी प्रकारके देवता-स्तुति-सम्बन्धी अथवा अन्य शिरोलेखके बिना 'स्वस्ति' ऐसा वचन ही आरम्भमें रहकर ‡ उसके पीछे ही लेख लिखा गया है, परन्तु इनका कोई भी लेख तथा शासन जिन-स्तुति-सम्बन्धी शिरोलेखसे युक्त नहीं है। इसके पश्चात् दिया जाने वाला नृपतुंगका शासन भी 'सवोव्यात्' ऐसी हरिहर-स्तुतिसे ही प्रारम्भ होता है।

इनके शासनोंमें तथा ताम्र-पत्रोंमें भी बनाए हुए चिन्ह इस प्रकार हैं—(१) शिवकी मूर्ति (I. A. p. 156); पद्मासनसे युक्तसर्पोंको पकड़े हुए शिव (I. A.pp. 179,263); शिवलिंग और नन्दि(I. A.pp. 22, 224,255, 270); इत्यादि। इनमें पद्मासनसे युक्त और हाथसे सर्पोंको उठाए हुए शिवमूर्ति राष्ट्रकूट शासनोंमें रूढिगत लांछन है, इस प्रकार विद्वानोंका अभिप्राय है (I. A. P. 179)।

❀ प्रा० ले० मा० नं० १३३, १५६

† चित्रदुर्ग नं० ७१ (E.C. XI).

‡ ऐसा Epigraphia Carnatica लेखमाला इत्यादिके अनेक भागोंमें है और I. A. pp. 221, 222, 223, 224 इत्यादि।

इनमेंसे बहुतसे नरेशोंने जिनालयोंको दान भी दिया है,पर इससे इतना ही जाहिर होता है कि वे सब धर्मोंको समान दृष्टिसे देखते थे। इससे वे जैनधर्मी थे, यह बात कही नहीं जा सकती। क्योंकि इनमें तीसरे गोविन्दने 'अशेष गंगमंडलाधिराज श्रीचाकिराज' की विज्ञापनाके अनुसार ई० सन् ८१३ में एक जिनेन्द्र-भवनको दान दिया है, यह बात एक शासन परसे दिखाई देती है। (I. A. pp. 13-16) उसी नरेशने ई० सन् ८०९ में वेदवेदांगनिष्णात ब्राह्मणको एक ग्राम दान दिया है, यह बात उसके एक ताम्रपत्रमें है। (Mythic Society's Journal, Vol. XIv. No. 2, P. 88); और इसी ताम्रपत्रका शिरोलेख हरिहर-स्तुति-सम्बन्धी ('सवोव्यात्' ऐसा) श्लोक तथा इसीकी मुद्राका चित्र शिवकी मूर्ति मालूम पड़ता है।

अब नृपतुंगके समयके एक शिलालेख (I.A pp. 218 219) का परिशीलन कीजिये—

स्वस्ति॥ सवोव्याद्वेधसा धाम यन्नाभिकमलंकृतम्।
हरश्च यस्य कांतेदुकलया कमलंकृतम् ॥
....
लब्धप्रतिष्ठमचिरायकलि सुदूर—
मुत्सार्य शुद्धचरितैर्धरणीतलस्य ॥
कृत्वा पुनः कृतयुगक्रियमप्यशेषं।
चित्रं कथं निरुपमः कलिवल्लभोऽभूत् ॥
....

* यह 'निरुपम कलिवल्लभ' याने नृपतुंगका पितामह पहिला ध्रुव (धोर) नामका है।

प्रभूतवर्ष गोविन्दराज † शौर्येषु विक्रमं····जगत्तुंग इति श्रुतः ॥·····अथ स कीर्तिनारायणो जगति ॥ अरिनृपतिमुकुटघट्टितचरणस्सकलभुवनवलयविदितशौर्यः। वंगांगमगधमालववेंगीशैरर्चितोतिशयधवलः ॥

स्वस्ति समधिगतपंचमहाशब्द-महाराजाधिराज-परमेश्वरभट्टारक-चतुरुदधिवलयवालयुतसकलधरातल-प्रातिराज्यानेकमंडलिकर्कलाकटककटिसूत्र-कुण्डलकेयूर-हाराभरणालंकृत·····अमोघरामं परचक्रपंचाननं·····बहे ‡ मनोहरं अभिमानमंदिरं रट्टवंशोद्भवं गरुड़लांछनं तिविलियपरे घोषणं लट्टलूरपुरपरमेश्वरं श्रीनृपतुंगनामांकित—लक्ष्मीवल्लभेन्द्रना चन्द्रादित्यरकालं वरेग महाविष्णुवराज्यंबोल् उत्तरोत्तरं राज्याभिवृद्धिसलुत्तिरे शवनृपकाला-तीतसंवत्सरंगल एलनूर··· तोंबत्तेएटनेय व्ययमेब संवत्सरं प्रवर्तिसे श्रीमदमोघवर्षनृपतुंग-नामांकितना विजयराज्यप्रवर्द्धमानसंवत्सरंगल अप्वत्तेरडं उत्तरोत्तरं राज्याभिवृद्धिसलुत्तिरे अतिशयधवलनरेन्द्रप्रसादर्दिदममोघ वर्षदेव-पदपंकजभ्रमरं ··· ज्येष्ठमासदमासेयुं आदित्यवारमाशिसूर्यग्रहणदन्दु····· नागार्जुननं बेसगे सिरिगाउंडनएल्लु※ पुदिदुदु ॥

यह शालिवाहन शक के ७८७ वर्ष व्यतीत होकर ७८८ के व्यय संवत्सरके ज्येष्ठ ब० ३० सूर्य्यग्रहण दिन समाप्त होजानेको कहनेसे वह तिथि ई० सन् ८६६ के जून ता० १६ के दिन होती है। वह साल नृपतुंगका राज्य भारकालका ५२ वाँ वर्ष कहा जानेसे वह ई० स० ८१५ में गद्दी पर बैठा होगा। वैसे ही उनके अन्य शासनोंसे उसने ई० स० ८७७ तक यानी करीब ६२-६३ साल तक प्रजा-परिपालन किया, ऐसा मालूम पड़ता है। अतः इसके नामका ई० स० ८७० का शासन सोरब नं ८१ वां † इसके अन्तिम सालमें लिखा गया होगा। इतना ही नहीं उस वक्त वह सिंहासनासीन होगा, ऐसा उससे निष्पन्न होता है।

इसे गद्दी पर बैठते वक्त कमसे कम यानी १८ या २० सालका तो अवश्य होना चाहिये, इस प्रकार मानने पर इसका शासन समय समाप्तहोते वक्त इसे ८१ या ८३ वर्षसे ऊपरका होना चाहिये। इससे भी ज्यादा ही होना चाहिये न कि कम इतना कह सकते हैं। अतः इसके समयके ५२ वें वर्षके शासनमें 'सर्वोग्यात्' इस प्रकारका हरि-हर-स्तुति-सम्बन्धी शिरोलेख रहनेसे तब तक उसने जैनधर्मको ग्रहण नहीं किया ऐसा कहनेमें कोई आक्षेप नहीं दीखता। हमारे अनुमानके अनुसार तब उसकी करीब ७०-७२ तक अवस्था होनी चाहिये। यह शा० श० ७९७ में (ई० सन ८७५) गद्दी अपने पुत्रको छोड़कर राज्यकारसे निवृत हुआ, इस प्रकार श्रीमान् के. बी. पाठक

† यह 'प्रभूतवर्ष' (जगत्तुंग) ऐसा गोविन्दराज नृपतुङ्गका पिता है।

‡ यह 'बहे' ऐसा शब्द 'बर्दु' (बर्देन्दु प्रौढि) उसीका रूपान्तर होगा?

※ एल्लु=बरह, यह 'एल्लु' शब्द आधुनिक कनडीमें नहीं, परन्तु तामिल, मलैयाल भाषामें सर्वसामान्य है।

† E. C., Vol. VIII., Pt. II (स्वस्त्यमोघवर्षवल्लभमहाराजाधिराजपरमेश्वरभट्टारका पृथवीराज्यं गेये····· शकवर्षमेलनूरतोंभतोंभतनेय संवत्सरंप्रवर्तिसे·····॥ इस लेखमें देवता-स्तुति शिरोलेख नहीं है।

महाशयकी राय है ‡ वह कौनसे आधारसे है, यह मालूम नहीं होता। इतना ही नहीं सोरब शिलालेख नं० ८५ (ई० स० ८७७) के शासनमें इस अमोघवर्षको 'पृथिवी राज्यं गेये' ऐसा कहा जाने से वही उस समय गद्दी पर रहा होगा इस प्रकार दृढताके साथ मालूम पड़नेसे पाठक महाशयका कहना ठीक मालूम नहीं पड़ता है।

अतः ई० सन् ८७७ वें तक तो यह राज्यकार से निवृत नहीं हुआ ऐसा कहना चाहिये।

इसके पिता गोविंदके कुछ शासनोंसे ऐसा मालूम होता है कि गोविन्दके पिता ध्रुव अथवा धोरनरेश (निरुपम, धारा वर्ष, कलिवल्लभ) ने अपने पुत्रके पराक्रम पर मोहित होकर अपने जीवनकालमें ही उसे गद्दी पर बैठाकर आप राज्यकारसे निवृत होना चाहा और यह बात उसे सुनाने पर उसने उसे स्वीकार नहीं किया। आपके अधीन मैं युवराज्य ही होकर रहूँगा ऐसा कहा, इस प्रकार लिखा हुआ है ❀। अतः राष्ट्रकूटवंशीय नरेशोंमें अपने बुढापेके कारण, या पराक्रमी पुत्र की दिग्विजय आदि साहसकार्यसे खुश होकर या अपनी स्वच्छन्दतासे गद्दी छोड़नेका यह एक उदाहरण मिलता है। अतः नृपतुंग ई० सन् ८७७ के अनन्तर अपनी उम्र ८० के ऊपर समझ कर राज्यकारसे निवृत हुआ होगा तो उसने अपने विवेकसे ही ऐसा किया होगा यह कहना चाहिये। ऐसा न कहकर अपना धर्म छोड़ कर जैनधर्मी हुआ अथवा जैनधर्मी होनेसे ही उसने ऐसा किया, यह माननेका कोई कारण नहीं है।

इस वंशके लोगोंकी राजधानी 'मान्यखेट' (Malkhed) नगर है। उसे इस नृपतुंगने ही प्रथमतः अपनी राजधानी कर लिया था, इस प्रकार कीर्तिशेष डा. रा. गो. भंडारकरका कहना है (E. H. D. पृ० ५१)। 'कविराजमार्ग' के उपोद्घातमें श्रीमान् पाठक महाशयके कथनानुसार (पृ० १०) यह मान्यखेट नृपतुंगके प्रपितामह प्रथमकृष्णके कालसे ही इस वंशके लोगोंकी राजधानी था ऐसा मालूम पड़ता है। उसके पहिले उनकी राजधानी 'मयूरखंडि' (वर्तमान बंबई आधिपत्यके नासिक जिलाके 'मोरखंड') थी ऐसा जान पड़ता है। कुछ भी हो, (वर्तमान धारवाड़ जिलाके अन्तर्गत) 'बंकापुर' उनकी राजधानी नहीं थी, यह बात दृढताके साथ कही जा सकती है—

जिनसेनाचार्यकी परंपरा इस प्रकार पाई जाती है:—

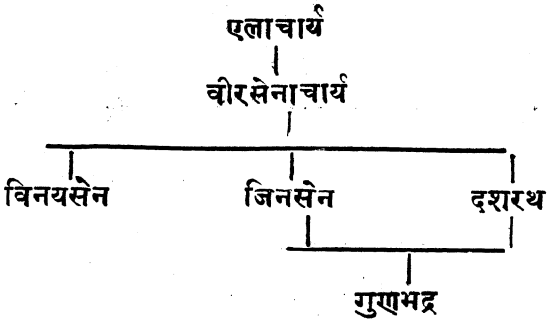

इस परंपराके संबन्धमें इन्द्रनंदिके 'श्रुतावतार' में निम्न प्रकार कहा है * :—

‡ कविराज मार्ग—उपोद्घात पृ० ६।

❀ E.A.D.P. 49-50 (Mythic Society's Journal Vol. XIV, No. 2, P. 84)

* वि० र० मा० पृ० १०,

कालेगते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटपुरवासी ।
श्रीमानेलाचार्यो बभूव सिद्धान्ततत्वज्ञः ॥ १७६ ॥
तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरुः ।
उपरितमनिबन्धनाद्यधिकारनष्टं लिलेख ॥ १७७ ॥

वीरसेनका शिष्य जिनसेन था और वीरसेन का विनयसेन नामक बड़ा शिष्य भी था, यह बात जिनसेनके ग्रन्थोंसे पाई जाती है—

श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृंगः ।
श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान् ॥
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण ।
काव्यं व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम् ॥ पार्श्वाभ्युदय ४,७१

गुणभद्रके 'उत्तरपुराण' की प्रशस्तिमें † इस परंपराके सम्बन्धमें इस प्रकार कथन है :—

वीरसेनाग्रणी वीरसेनभट्टारको बभौ ॥ ४
मुनिरनुजिनसेनो वीरसेनादमुष्मात् ॥ ६ ॥
दशरथगुरुराक्षीत्तस्य धीमान् सधर्मा ॥ १३ ॥
शिष्यः श्रीगुणभद्रसूरिरनयो ‡ रासीज्जगद्विश्रुतः ॥१५॥

देवसेनाचार्यने अपने 'दर्शनसार' (ई० स० ९३४) में इस प्रकार कहा है:—

सिरिवीरसेणसिस्सो जिणसेणो सयलसत्थविण्णाणी ॥३०
तस्स य सिस्सो गुणवं गुणभद्दो दिव्वणाणपरिपुण्णो ॥३१*

ये वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र दिगम्बर जैन धर्मके मूल संघके † 'सेन' संघ वाले थे, इतना ही मालूम पड़ता है; पर कौनसे 'गण' के और कौन से 'गच्छ' वाले थे सो मालूम नहीं पड़ता। ये बहुशः 'देशीगण' के होने चाहियें। ये 'पुन्नाट' गण वाले नहीं हैं, इस सम्बन्धमें जैन विद्वानोंमें अभिन्न विश्वास है ‡।

'पुन्नाट' इस नामका गण भी 'सेन' संघकी एक शाखा है। इसी सेन संघके पुन्नाटगण❀के दूसरे 'जिनसेन' ने संस्कृतमें करीब ११००० श्लोक परिमित जैन 'हरिवंश' की रचना की है। उसे उसने शक सं० ७०५ (ई० सन ७८३) में लिख कर पूर्ण किया है। उस समय राष्ट्रकूटवंशका नरेश श्रीकृष्णराजका पुत्र श्रीवल्लभ नामका दूसरा गोविन्द गद्दी पर था, यह बात उसकी प्रशस्तिके निम्न पद्य*से पाई जाती है—

शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसुदिशां पंचोत्तरेषूत्तराम् ।
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभेदक्षिणाम् ॥२३॥

इस हरिवंशपुराणके कर्ता जिनसेनने अपने ग्रन्थके मंगलाचरण + में वीरसेन, जिनसेनाचार्योंकी इस प्रकार प्रशंसा की है:—

---

† जै० सि० भा० १ पृ० २७

‡ 'अनयोः' इन दोनोंका अर्थात् जिनसेन और दशरथ दोनोंका शिष्य।

* संस्कृत छाया—
श्रीवीरसेनशिष्यो जिनसेनः सकलशास्त्रविज्ञानी ॥३०॥
तस्य च शिष्यो गुणवान् गुणभद्रो दिव्यज्ञानपरिपूर्णः ॥३१

† इस मूलसंघकी शाखा इत्यादिके संबन्धमें श्रवणबेलगुलके बहुतसे शासनोंमें उल्लेख हैं।
(E. C. Vol. II)

‡ वि० र० मा० पृ० ८

* जै. सि. भा. १, २-३ पृ. ७३
('पवित्र पुन्नाटगणाग्रणी गुणी')

❀ जै. सि. भा. १, २-३. पृ० ७४

+ जै. सि. भा. १, २-३ पृ० ६७

जितात्मपरलोकस्य कवीनां चक्रवर्तिनः ।
वीरसेनगुरोः कीर्तिरकलंकावभासते ॥ ४० ॥
यामिताभ्युदये तस्य जिनेन्द्रगुणसंस्तुतिः ।
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्तिः संकीर्तयत्यसौ ॥ ४१ ॥
वर्द्धमान पुराणोद्यदादित्योक्तिगभस्तयः ।
प्रस्फुरन्ति गिरीशान्तः स्फुटस्फटिकभित्तिषु ॥ ४२ ॥

ये श्लोक 'हरिवंश' के आदि-भागमें हैं, जिस के ११००० श्लोक लिखनेमें कमसे कम ५ साल तो लगे होंगे। अतः जिनसेनने उसे शक सं० ७००(ई० सन् ७७८) में लिखना प्रारंभ किया होगा ऐसा मालूम पड़ता है। तब वीरसेन कवि-चक्रवर्ती कहलाते थे, उसके पहिले उन्होंने अनेक काव्योंकी रचना की होगी; वैसे ही उनके शिष्य जिनसेनने भी उसके पहिले संस्कृतमें 'वर्धमान-पुराण' तथा 'जिनेन्द्रगुणसंस्तुति' * नामका काव्य लिखकर पूरा किया होगा। इस हरिवंशमें गुरु वीरसेनको 'स्वामी' कहे बिना उनके शिष्य जिनसेनको 'स्वामिनो † जिनसेनस्य' कहा जानेमें गुरु शिष्य दोनोंके जीवित रहते वक्त वैसा कहना अनुचित होगा। इस मंगलाचरणकी रचना करते वक्त वीरसेन स्वर्गवासी हो चुका होगा केवल जिनसेन मौजूद था ऐसा मालूम पड़ता है; वैसे ही उसे 'स्वामी' इस प्रकार संबोधित करनेसे वह उस वक्तका महाविद्वान् तथा बड़ा आचार्य होता हुआ प्रख्यात हुआ होगा। अतः वैसा कीर्ति-वान् होनेके लिये उस कीर्तिके कारणभूत अनेक काव्योंकी उसने रचना की होगी। उस वक्त उसकी अवस्था कमसे कम २५ वर्ष तो अवश्य होगी इस से कम तो सर्वथा नहीं होगी,यह बात निश्चयपूर्वक कह सकते हैं। ऐसी अवस्थामें वह शक सं० ६७५ (ई० सन् ७५३) के पहिले ही पैदा हुआ होगा।

वीरसेनाचार्यके शिष्य हमारे जिनसेनने उपर्युक्त दो ग्रन्थोंके सिवाय * और भी अनेक संस्कृत काव्योंको लिखा है, जिनमें मुख्य

* इस काव्यका नाम (पार्श्वजिनेन्द्रस्तुति) है, ऐसा 'विद्वद्रत्नमाला' में (पृष्ट २६) बतलाया है, उसी का (जिनगुणस्तोत्र) नामसे 'पूर्वपुराण' की प्रस्तावनामें (पृ० ५) उल्लेख है। ('पूर्वपुराण'—न्यायतीर्थ शान्तिराज शास्त्रीका कर्नाटक अर्थसहित मुद्रण—मैसूर १९२५)

† इस जिनसेनको 'स्वामी' कहनेके लिये क्या कारण है, इस सम्बन्धमें 'तत्वार्थसूत्रव्याख्याता स्वामीति परिपठ्यते' (नीतिसार) वचनका आधार देते हैं (वि. र. मा. पृ० २६)। पर जिनसेनने तत्वार्थसूत्र पर व्याख्या ई० सन् ८३७-८३८ में लिखी है; ई० स० ७७८—७८३ के अन्दर लिखे गये 'हरिवंश' में उस कारणसे उसे 'स्वामी' ऐसा न कहा होगा; इसके अलावा उस व्याख्याको वीरसेनने लिखना प्रारंभ किया था, उसे पूर्ण करनेके पहिले ही उनका स्वर्गवास हो जानेसे उसे जिनसेनने पूर्ण किया ऐसा मालूम पड़ता है। ऐसा हो तो वीरसेनको 'स्वामी' क्यों नहीं कहा ?

* ये दोनों ग्रन्थ अब तक प्राप्त नहीं।

['जिनेन्द्रगुणसंस्तुति' का अभिप्राय पार्श्व जिनेन्द्र की स्तुति 'पार्श्वाभ्युदय' काव्यसे है और वह उपलब्ध है तथा सं० १९६६ में छपकर प्रकाशित भी हो चुका है। —सम्पादक]

ये हैं—

१ उमास्वातिके 'तत्त्वार्थसूत्र' पर इस जिनसेनके गुरु वीरसेनने 'जयधवला' नामकी टीका लिखनी प्रारंभ की थी, जिसकी करीब २०००० श्लोकोंकी रचना करके उनके स्वर्गवासी होने पर जिनसेनने उसमें पुनः ४०००० श्लोकोंको जोड़ कर ६०००० श्लोकोंसे युक्त उस ग्रन्थको पूरा किया ×। उसे पूरा करनेके समय-संबन्धमें जिनसेनने उसके अन्तमें इस प्रकार कहा है:—

इति श्रीवीरसेनीया टीका सूत्रार्थदर्शिनी।
मटग्रामपुरे श्रीमद्गुर्जरार्यानुपालिते॥
फाल्गुने मासि पूर्वाह्णे दशम्यां शुक्लपक्षके।
प्रवर्धमानपूजायां नन्दीश्वरमहोत्सवे॥
अमोघवर्षराजेन्द्रप्राज्यराज्यगुणोदया।
निष्ठितप्रचयं यायादकल्पान्तमनल्पिका॥
एकान्नषष्टिसमधिकसप्तशताब्देषु शकनरेन्द्रस्य।
समतीतेषु समाप्ता जयधवला प्राभृतव्याख्या॥ †

अर्थात्—अमोघवर्ष नामक नरेशके प्राज्य (=विस्तृत) राज्य (=राज्यभार) के गुण (=प्रभाव) से उदित हुई (=पैदा हुई) वह 'जयधवला' ‡ टीका, गुर्जर (गुजराती) नरेशके शासनमें विद्यमान 'मटग्राम' नामके नगरमें शक सं० ७५९ (ई० स० ८३७—८३८) फाल्गुण शु० दशमीके दिन समाप्त हुई।

अतः इस टीकाको समाप्त करते वक्त जिनसेनकी अवस्था करीब ८४—८५ वर्षकी होनी चाहिये।

२ पार्श्वाभ्युदयकाव्य—यह कविकुलगुरु कालिदासके 'मेघदूत' काव्यके ऊपर समस्यापूर्ति के रूपमें रचा गया एक छोटासा काव्य है। इसमें जिनसेनने २३ वें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी कैवल्य-वर्णना बहुत अच्छी की है। इसमें ४ सर्ग हैं और उनमें कुल ३६४ वृत्त हैं। अन्त्यग्रन्थमें इस प्रकार कहा है:—

इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघं।
बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यं॥
मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशांकं।
भुवनमवतु देवस्सर्वदामोघवर्षः॥ ४-७०॥

इससे यह काव्य अमोघवर्ष नामके एक नरेशके समयमें रचा गया मालूम पड़ता है। इस काव्यको पढ़ते वक्त मालूम पड़ता है कि इसे कवि

× वीरसेन तथा जिनसेनने 'जयधवला' नामकी जो टीका लिखी है वह उमास्वातिके 'तत्त्वार्थसूत्र' की टीका नहीं है, किन्तु श्रीगुणधराचार्य-विरचित 'कसायपाहुड' (कषायप्राभृत) नामके सूत्र ग्रन्थकी टीका है। जान पड़ता है 'सूत्रार्थदर्शिनी' पद परसे लेखक महाशयको भ्रम हुआ है और उसने 'सूत्र' शब्दका अभिप्राय गलतीसे उमास्वातिका तत्त्वार्थसूत्र समझ लिया है। —सम्पादक

† जै० सि० भा० १, १. पृ० ५२-५३

‡ यह 'जयधवला' टीका सिद्धान्तग्रंथ कहलाती है। इसकी पूर्णप्रति अब (दक्षिण कनड जिलाके) 'मूडबिदरी' नामक स्थान पर 'सिद्धान्तमंदिर' में है। यह प्रति कुछ समयके पहिले श्रवणबेलगुलके 'सिद्धान्तमंदिर' में थी और वहींसे 'मूडबिदरी' को ले गये, इस प्रकार श्रवणबेलगुलके शासनग्रन्थोंके उपोद्घातमें कहा है। (E.C. Vol. II Introd. P. 28

ने अपनी मध्यमावस्थामें—अर्थात् ४०-४५ वर्षके पहिले ही लिखा होगा, यह बात उसकी वर्णना वैखरी इत्यादिसे मालूम पड़ती है। इसे जिनसेनने ई० सन् ८०० से पहिले ही लिखा होगा; याने नृपतुंगके गद्दी पर आरूढ़ (ई० स० ८१५) होनेके करीब १५ (या ज्यादा) वर्षोंके पहिले लिखा होगा। (पर 'हरिवंश' में इस काव्यका जिक्र न आनेसे † यह ई० सन् ७७८-७८३ के पहिले नहीं बनकर पीछे लिखा गया ऐसा कहना चाहिये।) ऐसी अवस्थामें इस 'पार्श्वाभ्युदय' में कहा गया 'अमोघवर्ष' राष्ट्रकूट गुजरात-शाखाका दूसरा 'कक्क' नामका अमोघवर्ष होगा क्या? क्योंकि जिनसेनने अपनी 'जयधवला' टीकाको गुर्जरनरेश से पालित मटग्राममें लिखकर समाप्त किया है। नृपतुंगकी (या उसके पिता गोविन्दकी) राजधानी मान्यखेटमें या अन्य किसी जगहमें नही लिखा जानेसे जिनसेनके पोषक राष्ट्रकूट वंशज गुजरात-शाखावाले शायद होंगे, इस शंकाको स्थान मिलता है। अथवा 'पार्श्वाभ्युदय' को जिनसेनने अपनी आयुके ६० वर्ष पश्चात् स्वयं लिखा होगा तो उसमें कहा गया अमोघवर्ष इस लेखका नायक नृपतुंग ही होगा।

३ आदिपुराण (अथवा पूर्वपुराण)—यह जिनसेनका अन्तिम ग्रन्थ है। जिनसेनने अपने गुरु वीरसेनके स्वर्गारोहणानंतर उनसे नहीं पूरी की गई-बची हुई 'जयधवला' टीकाको स्वयं पूर्ण करके पश्चात् आदिपुराण लिखना प्रारंभ किया यह बात वास्तविक है; ऐसी अवस्थामें इसे उसने अपनी ८४-८५ वर्षकी अवस्थाके पश्चात् लिखना प्रारंभ किया होगा, पर वह इसे पूर्ण नहीं कर सका; इसके ४२ पर्व तथा ४३ वें पर्वके ३ श्लोक मात्र (याने कुल १०,३८० श्लोकोंको) लिखने पर वह जिनधामको प्राप्त हुआ। उस उन्नतावस्थामें भी १०,३८० श्लोकोंके लिखनेमें उसे १० वर्ष तो लगे होंगे। उस वक्त उनकी ९५ वर्षके करीब तो अवस्था होनी चाहिये। ऐसी अवस्थामें उनका देहावसान ई० सन् ८४८ के आगे या पीछे हुआ होगा।

४ जिनसेनके मरणानंतर उसके शिष्य गुणभद्रने इस ग्रंथमें करीब १०,००० श्लोकोंको जोड़ कर, करीब २०,००० श्लोक प्रमाण इस 'महापुराण' को* समाप्त किया। अपनी रचना-समाप्ति-समय के सम्बन्धमें वह उसकी प्रशस्तिमें † इस प्रकार कहता है:—

अकालवर्षभूपाले पालयत्यखिलामिलाम् ॥३२॥

... ...

श्रीमति लोकादित्ये.....॥३३॥

चेल्लपताके चेल्लध्वजानुजे चेल्लकेतनतनूजे।
जैनेन्द्रधर्मवृद्धिविधायिनि.....॥३४॥
वनवासदेशमखिलं भुंजति निष्कंटकं सुखं सुचिरं।

† 'हरिवंश' में 'जिनेन्द्रगुणसंस्तुति' रूपसे इसी काव्य ग्रंथका उल्लेख जान पड़ता है।

—सम्पादक

* इसमें 'आदिपुराण' (अथवा 'पूर्वपुराण') की कुल श्लोकसंख्या १२,०००, 'उत्तरपुराण' की संख्या ८,००० है, ये दोनों भाग मिलकर 'महापुराण' कहलाता है।

† जै० सि० भा० भाग १,० पृ २८

तन्पितृनिजनामकृते ख्याते बंकापुरे पुरेष्वधिके ॥३५॥
शकनृपकालाभ्यन्तरविंशत्यधिकाष्टशतमिताब्दान्ते ।
मंगलमहार्थकारिणि पिंगलनामनि समस्तजनसुखदे ॥३६

अर्थात्—राष्ट्रकूट वंशके (नृपतुंगके पुत्र) अकालवर्ष नामक दूसरे कृष्णके शासन करते वक्त (उसका सामन्त) 'चेल्लपताक' नामक लोकादित्य जैनधर्मकी अभिवृद्धि कर्ता हुआ। 'वनवास † देश पर शासन करते वक्त (उस वनवास देशमें) उस लोकादित्यके पिताके नामसे निर्मित 'बंकापुर (इस नामकी उसकी राजधानी) में शक सं०८२० (ई० स० ८९७-८) में गुणभद्रने 'उत्तरपुराण' लिखकर समाप्त किया।

क्या नृपतुंग जैन था ?

(अ) जिनसेन, गुणभद्रके काव्योंमें स्थित उल्लेख

१. नृपतुंगने जैनधर्मको स्वीकार किया, इस बातको मानने वाले उसे जिनसेनद्वारा जिनधर्ममें दीक्षित हुआ विश्वास करते हैं;उनके इस विश्वास-संबन्धमें गुणभद्रके 'उत्तरपुराण' का यह वृत्त ही अन्य आधारोंसे प्रबल आधार है ‡ इस बातको भूलना नहीं। वह वृत्त इस प्रकार है ‡—

यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भवत् ।
पादाम्भोज रजः पिशंगमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः ॥
संस्मर्ता स्वयममोघवर्षनृपतिः पूतोहमद्येत्यलं ।
स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मंगलम्॥१०॥

इससे अमोघवर्षने जिनसेनको वन्दन करके अपनेको अब ही (='अद्य') धन्य माना यह बात मालूम पड़ती है, इसके सिवाय जिनसेनसे जैनधर्मावलम्बन किया या स्वधर्म छोड़कर जिनसेनका शिष्यत्व ग्रहण किया है, ऐसा अर्थ निकलता है या नहीं सो मैं नहीं जानता। इसके सिवाय उसमें 'अद्य' यह शब्द रहनेसे जिनसेन और अमोघवर्षके बीचमें एक समय परस्पर भेटका वर्णन मालूम पड़ता है, इससे ज्यादा अर्थ उसमें अनुमान करना ठीक नहीं मालूम होता है। अथवा अमोघवर्ष जिनसेनसे जैनदीक्षा लेकर उसका शिष्य हुआ होगा तो गुणभद्रने उसे स्पष्ट क्यों नहीं किया? इसी गुणभद्रने अपने 'उत्तर पुराण'में बंकापुरके लोकादित्यको 'जैनेन्द्रधर्मवृद्धि-विधायी' इस प्रकार नहीं कहा क्या ? अमोघवर्षने गुणभद्रके खास गुरुसे ही जैनधर्मका अवलंबन किया होगा तो उसे वैसे ही उल्लेख क्यों नहीं किया ? और अमोघवर्ष अपने गुरुका शिष्य था, तो वह अपना सधर्मी होनेसे गुणभद्रने अपने 'उत्तरपुराण' को अपने सधर्मीके पुत्र अकालवर्षके आस्थानमें या राजधानीमें अथवा उसके राज्यके किसी और स्थानमें न लिखकर उसके सामन्त राज लोकादित्यकी राजधानीमें क्यों लिखा ?

† बम्बई प्रान्तके उत्तर कन्नड जिलाके वनवासी।

‡ (In the Prasasti of the 'Uttarpurana') we are told that he (i. e. Nripatunga or Amoghavarsha I) became the disciple of Jinasena the well known Jaina Author, who also bears testimony to the fact in tae Parsabhyudaya) I. A. pp. 216-217 (क. भा. उपोद्घात पृ० ६)

‡ जै०सि०भा० १, १, २७; वि०र० भा० पृ० २६.

२. नृपतुंगने ई० सन् ७९५-७९७ के अन्दर जन्म लिया होगा, वैसे ही जिनसेनने ई० सन् ७५३ से पहिले ही जन्म लिया होगा, इससे जिनसेन नृपतुंगसे उमरमें करीब ४२-४४ वर्ष बड़ा होगा। 'उत्तरपुराण' के श्लोकके अनुसार नृपतुंग-अमोघवर्षने जिनसेनको वंदन किया यह बात जिनसेनके अवसान के पहिले ही होनी चाहिये और वह ई० सन् ८४८ के पीछे होनी चाहिये। जिनसेनने अपनी 'जयधवला' टीका को ई० सन् ८३७ में पूर्ण किया उसके पहिले ही उसे अमोघवर्ष-नृपतुंगने अपना गुरू बनाया होगा, तब उस कीर्तिदायि विषयको जिनसेन अपने पवित्र ग्रन्थ—उस टीका—में व्यक्त किये बिना 'अमोघवर्षराजेन्द्रप्राज्यराज्यगुणोदया' इतना ही कह सकता था क्या? अथवा अपने शिष्य अमोघवर्षकी राजधानीमें या उसके राज्यके अन्य स्थान पर उसे नहीं लिखकर 'गुर्जरार्यसे पालित' मटग्राममें उसे लिखता क्या?

३. जिनसेन के अन्तिम ग्रन्थ 'आदिपुराण' में नृपतुंग-अमोघवर्षका नाम नहीं है। यदि वैसा नरेश उसका शिष्य हुआ होता तो उसका नाम जिनसेनने क्यों नहीं कहा सो समझमें नहीं आता।

४. गुणभद्रके 'उत्तरपुराण' में जिनसेनकी 'जयधवला' टीकामें तथा 'पार्श्वाभ्युदय' में 'अमोघवर्ष' ऐसा नाम देखा जाता है; राष्ट्रकूट वंशके नरेश 'शर्व' का 'शर्व' नाम तथा मुख्यतः 'अमोघवर्ष' नामसे विशेष प्रख्यात् 'नृपतुंग' ऐसे नामका बिलकुल अभाव क्यों?

'पार्श्वाभ्युदय' काव्य

इस काव्यके अन्तमें (४, ७०)—

'भुवनमवतु देवस्सर्वदामोघवर्षः॥'

इस प्रकार सिर्फ आशीर्वाद वचन ही है। इससे यह काव्य पूर्ण करते वक्त अमोघवर्ष नामका कोई नरेश था उसे जिनसेनने अपने काव्यमें उल्लेखित किया, इतना ही मालूम पड़ता है; इससे वह अमोघवर्ष इस जिनसेन-द्वारा जैनधर्मी हुआ था—उसका शिष्य हुआ ऐसा अर्थ होता हो तो मैं नहीं जानता।

परन्तु इस काव्यकी छपी हुई प्रति (Nirnayasagara Press, Bombay: विक्रम सं० १९६६) के प्रत्येक सर्गके अन्तमें यह एक गद्य है:—

"इत्यमोघवर्षपरमेश्वर-परमगुरु-श्रीजिनसेनाचार्य-विरचित-मेघदूतवेष्टितवेष्टिते पार्श्वाभ्युदये भगवत्कैवल्य-वर्णनं नाम (प्रथमः, द्वितीयः; तृतीयः, चतुर्थः) सर्गः॥"

इससे जिनसेन अमोघवष का गुरु था यह बात मालूम पड़ती है, पर यह रचना स्वयं जिनसेन की नहीं, बहुतसे समयके पश्चात् प्रक्षिप्त हुई होगी, यह बात निम्न लिखित कारणोंसे मालूम पड़ती है:—

१. यह काव्य कालिदासके 'मेघदूत' के ऊपर समस्या-पूर्तिके रूपमें रचा गया है। 'मेघदूत' में 'पूर्वमेघ', 'उत्तरमेघ' इस प्रकार दो भाग हैं उनके अनुसार इसमें भी दो भाग होने चाहियें थे, पर इसमें वैसे न होकर केवल ४ सर्ग रक्खे गये हैं, जो न्यूनाधिक रूपमें विभाजित दिखाई देते हैं*,

* प्रथम सर्गमें ११८ पद्य, दूसरेमें ११८, तीसरेमें ५७, चौथेमें ७१, कुल पद्यसंख्या ३६४।

और यह सर्गविभाग भी कथावस्तुमें दिखाई देने वाले समन्वयके आवश्यकीय परिच्छेदोंके अनुकूल न रह कर 'मेघदूत' से समस्यापूर्तिके लिये लिया गया पाद.....ठीक न रह कर कृत्रिम रूपसे किया गया मालूम पड़ता है‡। इससे जिनसेन ने यह सर्ग-विभाग नहीं किया किन्तु उससे उपरान्त के किसीने किया मालूम पड़ता है। इसके सिवाय अनर्गल रूपसे बहने वाले (३६४ पद्योंसें युक्त) इस छोटेसे कथानक में सर्ग विभक्ति की आवश्यकता क्यों हुई सो मालूम नहीं पड़ता।

२. किसी काव्यमें अनेक सर्ग हों तो उन सर्गोंके अन्तमें दिये हुए गद्यमें उस सर्गमें वर्णित विषय को सूचना देने रूपसे कहनेका रिवाज है, अथवा उन सर्गोंको कविने अन्यान्य नाम न दिया हो तो अपने काव्यमें अमुक सर्ग समाप्त हुआ कहने का रिवाज है। पर तमाम सर्गोंका नाम एक रखनेका रिवाज कहीं है क्या? इस काव्यके प्रत्येक सर्गके अन्तमें उस सर्गको 'भगवत्कैवल्यवर्णनं नाम' कहा है। अपने 'आदिपुराण' के प्रत्येक सर्गमें उसकी वर्णनानुकूल पृथक् पृथक् समंजस नाम दिया हुआ होनेसे महाकवि जिनसेन द्वारा सिर्फ 'पार्श्वाभ्युदय'में इस प्रकारका दृष्टिदोष (Oversight) हो जानेकी सम्भावना नहीं है। अथवा इस 'पार्श्वभ्युदय' को ही केवल-'भगवत्कैवल्यवर्णनं' नामांतर (इसके विषयानुसार) दिया होगा तो सर्गान्तिम गद्यमें—"पार्श्वाभ्युदये भगवत्कैवल्यवर्णना प्रथमः, द्वितियः, इत्यादि) सर्गः" रहना चाहिये, जैसे है वैसे रहनेका क्या कारण है? इससे यह मालूम होता है कि प्रत्येक सर्गका अन्तिम गद्य जिनसेनका लिखा हुआ नहीं, और किसीका लिखा होगा।

३. इस 'पार्श्वाभ्युदय' के ऊपर योगिराट् पंडिताचार्यने व्याख्या लिखी है। इसने ई० सन् १३९९ में रचे हुए 'नानार्थमाला' कोषका उल्लेख अपनी व्याख्यामें कई जगह पर किया है, इससे यह टीकाकार बहुत पीछे हुआ मालूम पड़ता है; याने जिनसेनसे करीब ५५०-६०० वर्षोंसे पीछेका व्यक्ति मालूम पड़ता है। इसने अपनी व्याख्याके प्रति सर्गके अन्तिम स्थानमें अन्य व्याख्यातोंकी तरह व्याख्या जिस पर लिखी गई है उस काव्य के तथा व्याख्याके नामके साथ साथ—'इत्यमोघवर्ष-परमेश्वरपरमगुरुश्री जिनसेनाचार्यविरचितमेघदूतवेष्टित-वेष्टिते पार्श्वभ्युदये तद्व्याख्यायां च सुबोधिन्याख्यायां भगवत्कैवल्यवर्णनं नाम प्रथमः (द्वितीयः तृतीयः, चतुर्थः, सर्गः) इस प्रकार दिया है। इसमें 'पार्श्वाभ्युदय' और 'भगवत्कैवल्यवर्णनं' के बीच में इसने अपनी व्याख्या का नाम भी कहा है, अतः यह 'भगवत्कैवल्यवर्णन' विशेषवाचिको (उस काव्यका नाम तथा सर्गका नाम) इसने ही जोड़ा होगा, ऐसा व्यक्त होता है, वैसे ही अपनी व्याख्या के अन्तिम गद्यमें अनावश्यक 'अमोघवर्षपरमेश्वरपरमगुरूजिनसेनाचार्य' इस प्रकार पुनरुक्तिदोषका भी खयाल नहीं करके जोर जोरसे

‡ (उदा०—दूसरे सर्गके आदिमें 'इतः पादवेष्टितानि', तीसरे सर्गके आदिमें 'इतोर्ध्ववेष्टितानि', चौथे सर्गके आरंभमें 'इतः पादवेष्टितानि' इस प्रकार सूचना है। अतएव इस काव्यको सर्गरूपसे उसने ही विभाजित किया या व्याख्याताने किया, ऐसा मालूम पड़ता है।

कहनेसे मूल काव्यका सर्गान्तिम गद्य भाग भी इसके द्वारा ही जोड़ा हुआ मालूम पड़ता है। इस बातको और दृढ़ करने वाला एक और प्रबल आधार है। वह यह है:—

इस पंडिताचार्यने अपनी व्याख्यामें अपने से करीब ५५०-६०० वर्षोंके पीछे इस 'पार्श्वाभ्युदय' की उत्पत्ति-सबंन्धमें इस प्रकार कहा है कि कालीदास नामका 'कश्चित्कवि' 'मेघदूत' नामक काव्यकी रचना करके, 'मदोद्धुर' होता हुआ 'जिनेन्द्रांघ्रि सरोजेन्दिन्दिरोपम' * अमोघवर्षके राज्य 'बंकापुर' में आया था, और उस अमोघवर्षको—

सस्वस्य जिनसेनर्षिं विधाय परमं गुरुम्।
सद्धर्म द्योतयंस्तस्थौ पितृवत्पालयन् प्रजाः॥

इस प्रकार वर्णित किया है। साथ ही, वहाँके रहने वाले विद्वानों की निंदा करते हुये ('विदुषोवगणयैष') कालीदासके इस काव्यको अमोघवर्ष के सामने पढ़ने पर, उसकी विद्याहंकृति निवारण करनेके उद्देश्यसे और उसे 'सन्मार्गोद्दीप्ति' पैदा करानेकी इच्छासे अपने 'सतीर्थ्य' विनयसेनसे प्रेरित एक-पाठी जिनसेनने उस काव्यके प्रत्येक चरणको क्रमशः प्रतिवृत्तमें वेष्टित करके इस 'पार्श्वाभ्युदय'की रचना की, और फिर उसे आस्थानमें पढ़कर अपने काव्यसे ही कालिदासने प्रत्येक श्लोकसे चरण चुराकर ('स्तेयात्') 'मेघदूत' की रचना की है, ऐसा कहा बतलाया !!

परन्तु इसके बराबर असंबद्ध दन्तकथा और कोई नहीं। कारण, कालिदाससे जिनसेन कमसे कम २०० वर्षोंके करीब ‡ पीछे हुआ, अथवा 'मेघदूत' से 'पार्श्वाभ्युदय' श्रेष्ठकाव्य कहला नहीं सकता, उसे श्रेष्ठ बनानेके उद्देश्यसे यह असंबद्ध जनश्रुति अपने अनुबंधमें घुसेड़कर पंडिताचार्यने जिनसेनको अनृतवादी बना दिया। इसके सिवा इतिहासप्रमाण कोई मिलता नहीं; वैसे ही बंकापुर अमोघवर्षकी राजधानी नहीं थी, यह बात पहिले ही कही जाचुकी है। इन सब कारणोंसे यह मालूम पड़ता है कि पंडिताचार्यने लोगोंसे कही हुई दन्तकथा पर विश्वास रखकर उसे दृढ करनेके उद्देश्यसे अपने अनुबन्धमें घुसेड़कर उसके आधारसे जिनसेन अमोघवर्षका गुरु था यह बात 'पार्श्वाभ्युदय' के प्रतिसर्गके अन्तिम गद्यमें लिखकर और उसके सिवाय अपनी व्याख्याके प्रत्येक सर्गके अन्तिम गद्यमें पुनः पुनः जोरसे कही होगी। अतएव यह मूलकाव्यकी सर्गान्तिम गद्यरचना जिनसेनकी स्वतः रचना नहीं है; वह इस व्याख्याता पंडिताचार्य द्वारा या और किसीके द्वारा जोड़ी गई होगी। इतिहासकी दृष्टिसे उसकी बातें जिनसेनके समयसे बहुत ही आधुनिक होने के कारण उसे निराधार समझ कर छोड़ना पड़ता है।

* इस व्याख्याके अन्तिम गद्योंमें तथा अनुबन्धों में अथवा काव्यके प्रतिसर्गके अन्तिम स्थान पर जोड़े हुए गद्योंमें, इस काव्यमें (४,७०) दिखाई देने वाले 'अमोघवर्ष' नामके सिवाय उसका और कोई नामान्तर नहीं है।

‡ ई० सन् ६३४ के 'ऐहोले' के शासनमें कालिदासका नाम है—

"सविजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदास भारविकीर्तिः॥"

(प्रा० ले०मा० नं० १६)

प्राचीन भारतकी धर्म-समवृत्ति

इस सन्दर्भमें सुसंगत एक बात और कहना है। इस भारत भूमि पर पीछेके सभी नरेश तथा अन्य भी अपने राज्यमें अथवा अन्यत्र सभी जगह विद्यमान अन्य सब धर्मोंको तथा अन्य धर्मानुयायियोंको अपने धर्मके समान, समानदृष्टिसे पुरस्कृत करते थे। इतना ही नहीं, किन्तु उन लोगों के मठ-मंदिरादि बनवाकर दान देते थे, इस बात को दिखलाने वाले इतिहासमें बहुतसे प्रमाण हैं, उनमेंसे दृष्टान्तरूपमें कुछ यहाँ दिये जाते हैं :—

१. मौर्य सम्राट अशोक (ई० स० पूर्व २७४—२३६) बौद्धधर्म स्वीकार करके बौद्ध हुआ, यह बात ऐतिहासिक लोग जानते हैं, तो भी उसने काश्मीर देशमें सनातन धर्मका देव मंदिर बनवाकर जीर्णोद्धार करवाया था, यह बात 'कल्हण' की 'राजतरंगिणी' से मालूम पड़ती है—

अथावहदशोकाख्यः सत्यसन्धो वसुन्धराम् ॥१, १०१॥
जीर्णं श्रीविजयेशस्य विनिवार्य सुधामयं।
निष्कलूपेणाश्ममयः प्राकारो येन कारितः ॥ १, १०५ ॥
सभायां विजयेशस्य समीपे च विनिर्ममे।
शान्तावसादः प्रसादावशोकेश्वरसंज्ञितौ ॥ १, १०६ ॥

२. जैनधर्मानुयायी कलिंगदेशका राजा महामेघवाहन खारवेल (ई० स० पू० सु० १६९) सनातन, बौद्ध, जैनधर्मी साधुओंको समानदृष्टि तथा गुरुभक्तिसे सत्कार करता था तथा अपने राज्यमें अन्यान्य धर्मोंकी भी बिना भेद भावके रक्षा किया करता था, यह बात 'उदयगिरि†'के एक शासनसे मालूम पड़ती है।

३. गुप्तवंशीय नरेश 'समुद्रगुप्त' ‡ (ई० स० ३३०—३७५) स्वतः वैष्णव होते हुए भी, अपने धर्मके समान बौद्ध तथा जैनधर्मियों पर भी विशेष प्रेम रखता था; और उसे बौद्धमती 'वसुबन्धु' नाम के व्यक्ति पर विशेष आदर था; तो भी वह अपना स्वधर्म छोड़ कर बौद्ध नहीं हुआ। सिंहल देशके नरेश मेघवर्णने अपने देशसे इसके राज्यमें स्थित बुद्धगयाकी तरफ जानेवाले यात्रियोंके हितार्थ वहाँ स्वयं एक विहार बनानेके लिये इससे अनुमति चाही तो इसने उसे दिया, ऐसा मालूम पड़ता है।

४. चालुक्यान्वयका सत्याश्रय नामके दूसरे पुलिकेशीने अपने परमाप्त 'रविकीर्ति' नामके ('सत्याश्रयस्य परमाप्तवता.....'रविकीर्तिना' दिगम्बर शाखाके (और बहुशः 'नंदि' संघके) जैनपंडितको स्वयं बनवाकर दिये हुये जिनालयमें उस रविकीर्ति-द्वारा रचित और उत्कीर्ण शिलालेख (ई० सन् ६३४) जिनस्तुति-संबन्धी पद्योंसे आरंभ होते हुये भी, उस पुलिकेशीके अन्य सभी लेख विष्णु-स्तुति-सम्बन्धी पद्योंसे ही † प्रारंभ होते हैं, इतना ही नहीं

† यह 'उदयगिरि' ओड्र देश (Orissa) के 'कटक' (Cuttack) नगरसे १६ मील दूर पर है।

‡ Men and thought in ancient India, pp. 157-159.

इस समुद्रगुप्तका ध्वज गरुडध्वज था; इसके ऊपर दिये हुए नृपतुंगके शासनमें उसने अपनेको 'गरुडलांछन' कहा है, यह बात ध्यानमें लाना चाहिये।

† उदा०—(१) यह शक सं०५३२ (ई०स०६१०) का एक ताम्रपत्रके आरंभमें वराहरूपी विष्णुकी स्तुति है:—

जयति जलदवृन्दश्यामनीलोत्पलाभः।
... ...

वह विष्णुभक्त ही था और जैनधर्मावलम्बी नहीं हुआ यह बात इतिहाससे मालूम पड़ती है।

५. गुर्जर देशका नरेश सिद्धराज श्वेताम्बर जैनयति हेमचन्द्रसूरि पर विशेष श्रद्धा रखता था (ई० स० १०८७—११७१)। उसने अपनेको सन्तान न होनेकी चिंतासे हिंदू और जैनधर्मके पवित्र क्षेत्रोंकी यात्रा उस हेमचन्द्रके साथ करने पर भी, स्वधर्मका—सनातनधर्मका—त्याग नहीं किया। उसे हेमचंद्र गुरुके समान था। उसके साथ हेमचंद्रने सोमेश्वर शिवक्षेत्रकी यात्रा करते वक्त, स्वयं जैन होते हुये भी, परधर्म पर विरोध नहीं करते हुए वहाँके शिवलिंगका स्तवन किया, यह बात प्रद्युम्नसूरिकृत 'प्रभावकचरित्र' (ई० स० १२७७) ❀ में है। उस सिद्धराजके पश्चात् गद्दी पर आये हुए कुमारपाल (ई० सन् ११४१—११७१) ने जन्मतः शैवधर्मी रहकर, अन्तमें हेमचन्द्रसे जैनधर्म स्वीकार किया; परन्तु पश्चात् भी शिवभक्तिको भूला नहीं, यह बात श्वेताम्बर जैनयति जयसिंह सूरिसे रचित (ई० सन् १२३०) 'वस्तुपाल तेजःपाल प्रशस्ति' ❀से मालूम पड़ती है. इत्यादि।

अतएव जो कोई नरेश (अथवा अन्य कोई) स्वधर्मीके सिवाय परधर्मके यतियों या अन्य साधुओं (अथवा कवियों) की श्रेष्ठ विभूति पर आकर्षित होकर, उसे गुरुभावसे सत्कार करता है तो उससे वह अन्यमतीका शिष्य हुआ, या उसके उपदेशसे उसने स्वधर्म त्यागकर उसका मत स्वीकार किया इस प्रकार मान लेना कदापि ठीक नहीं; पर प्रबल और समर्थक अन्य ऐतिहासिक स्वतंत्राधार हों तो बिना संदेहके स्वीकार कर सकते हैं, क्योंकि गुर्जर कुमारपाल हेमचन्द्रके उपदेशसे जैनी हुआ था यह बात हेमचंद्रके ग्रंथों से "कुमारपालश्चालुक्यो राजर्षिः परमार्हतः"—हेमचन्द्रके 'अभिधान चिंतामणि' (श्लोक ७१२) से अन्य समकालीन और ईषत्कालान्तरके ग्रंथोंसे साधारण प्रमाण मिलनेपर उस इतिहास-तथ्यको कौन नहीं स्वीकार सकता?

(आगामी किरणमें समाप्त)

धरणिधरनिरोधास्त्विन्न वक्त्रोवराहः ॥

(२) ई० स० १४१ (जनवरी ३१) के शासनमें (E. C. X. गोरिविदनूरु नं०४८) इसने संगमतीर्थ में माघशु० ॥ पौर्णिमा चन्द्रग्रहण दिन स्नान करके 'पेरियाल' नामके ग्रामको सहिरण्य सोदक-पूर्वक ब्राह्मणोंको दान दिया लिखा है।

(३) इसके और एक ताम्रपत्रका (प्रा० ले० मा० नं० १२१) प्रथम श्लोक इस प्रकार है:—

जयति जगतां विधातुर्विक्रमाक्रान्तसकलभुवनस्य।
..... नखांशुजटिलं पदं विष्णोः ॥

❀ सूरिश्च तुष्टुवे तत्र परमात्मस्वरूपतः।
नमाम चाविरीधोहि मुक्तेः परमकारणम् ॥३४६॥
यत्र तत्र समये यथा तथा।
योसिसोत्यभिधया यथा तथा।
वीतदोष कलुषः सचेद्भवा।
नेक एव भगवन्नमोस्तु ते ॥ ३४७ ॥

(प्रभावकचरित पृ०३१७)

❀ धर्मापातिस्म कुमारपालनृपति .....॥२४॥
जैनं धर्ममुरीचकार.....।
.....गुरूचक्रे स्मरध्वंसिनम् ॥२५॥

Gaekwad's Oriental Series. —No. X
'हम्मीरमदमर्दन' पृ० ६०)

नवयुवकोंको स्वामी विवेकानन्दके उपदेश

[अनु० डा० बी. एल. जैन पी. एच. डी.]

मेरे युवक मित्रो ! अपना शरीर और आत्मा बलवान बनाओ। निर्बल और निर्वीर्य शरीरसे धर्मशास्त्रका अभ्यास करनेकी अपेक्षा तो खेल-कूदसे बलिष्ट बनकर, तुम स्वर्गके विशेष समीप पहुँच सकोगे।

तुम्हारा शरीर मज़बूत होगा तब ही तुम शास्त्रोंको भली भांति समझ सकोगे। तुम्हारे शरीरका रुधिर ताज़ा, मज़बूत तथा अधिक तेजस्वी होगा, तब ही भगवानका अतुल बल और उनकी प्रबल प्रतिभा तुम अधिक अच्छी तरह समझ सकोगे। जब तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों पर दृढ़तासे खड़ा रह सकेगा। तभी तुम अपने आपको भली भांति पहिचान सकोगे।

उठो, जागृत होओ और अपनी उन्नतिका काम अपने ही हाथमें लो। इतने अधिक समय तक यह कार्य, यह अत्यन्त महत्वका कर्तव्य तुमने प्रकृति को सौंप रखा था। परन्तु अब उसे तुम अपने हाथ में लो। और एक ही सपाटे में इस समग्र साक्षात समुद्रको कूद जाओ।

मानसिक निर्बलता ही अपनेमें प्रत्येक प्रकारके शारीरिक तथा मानसिक दुःखों को उत्पन्न करती है। दुर्बलता ही साक्षात् मरणरूप है।

निर्बल मनके विचारोंको त्याग दो। हे युवको ! तुम हृदय-बल प्राप्त करो ! शक्तिवान बनो ! तेजस्वी बनो ! बलवान बनो ! दुर्बलताकी गाड़ी पर से उठ कर खड़े हो जाओ तथा वीर्यवान और मज़बूत बनो।

सुदृढ़ता ही जीवन और निर्बलता ही मृत्यु है। मनोबल ही सुख सर्वस्व तथा अमरत्व है, दुर्बलता ही रोग, दुःख तथा मृत्यु है।

बलवान बनो ! तेजस्वी बनो ! दुर्बलताको दूर फेंक दो ! आत्मशक्ति तुम्हारे पूर्वजोंकी सम्पति है।

तामिल भाषाका जैनसाहित्य

[ले० प्रोफेसर ए. चक्रवर्ती एम. ए आई. ई. एस.]

[अनुवादक—पं० सुमेरचन्द दिवाकर न्यायतीर्थ शास्त्री बी.ए. एलएल. बी. सिवनी]

टोल्काप्पियम्—तामिल व्याकरणका यह प्रामाणिक ग्रंथ एक जैन विद्वानकी रचना समझा जाता है। इस विषयमें कुछ विद्वानोंका विवाद है और लेखकके धर्मके सम्बन्धमें बहुतसे विचार किये जाते हैं। हम केवल अंतरंग साक्षीमूल कुछ बातोंका वर्णन करेंगे और इस विषयको पाठकों पर उनके अपने निर्णयके लिये छोड़ेंगे। यद्यपि यह व्याकरणका ग्रंथ है, किन्तु आदि तामिल वासियोंकी समाज-विज्ञान विषयक वार्ताओंकी यह खान है, और शोध-खोजके विद्वान आदि तामिल वासियोंके व्यवहारों तथा रिवाजोंकी जानकारीके लिये मुख्यतया इसी ग्रंथ पर अवलबित रहते हैं। ऐतिहासिक शोधके विद्यार्थियोंने इससे पूर्णतया लाभ नहीं उठाया है यह एन्द्रके समान पुरातन व्याकरण शास्त्रोंपर अवलंबित समझा जाता है। जो प्राय संस्कृत-व्याकरणकी शैलीका उल्लेख करता है। यह व्याकरण विषय पर एक प्रमाणिक ग्रंथ समझा जाता है। तामिल भाषाके पिछले सभी ग्रन्थकार उसमें वर्णित लेखन-सम्बन्धी नियमोंका पूर्ण श्रद्धाके साथ पालन करते हैं। इस ग्रन्थके निर्माता, टोलकाप्पियम्, तामिल साहित्यके काल्पनिक संस्थापक अगस्त्यके शिष्य समझे जाते थे। इस ग्रन्थमें तत्कालीन ग्रंथकार पनंपारनार लिखित भूमिका है। उससे प्रमाणित होता है कि 'आइंदिरम् निरैनीका टोलकाप्पियम्,' ऐन्द्र व्याकरणकी पद्धति परिपूर्ण टोलकाप्पियम् पाड्य राजा की सभामें पढ़ा गया था और अदङ्कोट्टाशानके द्वारा समर्थित हुआ था। डा० वर्नेलका मत है कि टोलकाप्पियम्का रचयिता जैन या बौद्ध था और यह निर्विवाद है कि वह प्राचीन तामिल लेखकोंमें अन्यतम है। उसी भूमिकामें टोलकाप्पियम्का महान् और प्रख्यात पाडिमयोनके रूपमें उल्लेख है। टीकाकारने पाडिमयोन शब्दका इस प्रकार अर्थ किया है—"वह व्यक्ति जो तपस्या करे"। जैन साहित्य अध्ययन-कर्ताओं—विद्यार्थियोंको यह भलीभाँति विदित है कि 'प्रतिमा योग' एक जैन पारिभाषिक शब्द है और कुछ जैन मुनि प्रधान योगधारी कहे जाते थे। इस आधार पर एस० वायपुरी पिल्ले सदृश विद्वान अनुमान करते हैं कि टोलकाप्पियम् का रचयिता जैनधर्मावलम्बी था। वही लेखक टोलकाप्पियम्के उन सूत्रोंका उद्धरण देकर अपने निष्कर्ष को दृढ़ बनाता है जिनमें जीवोंके द्वारा धारण की गई इन्द्रियोंके आधार पर जीवोंके विभागका उल्लेख है। मरबियल विभागमें टोलकाप्पियम्ने घास और वृक्षके समान जीवोंको, एकेन्द्रिय घोंघेके समान जीवोंको, द्वाइन्द्रिय चींटीके समान जीवोंको त्रीइन्द्रिय केकड़े (Crab) के सदृश जीवोंको चौइन्द्रिय बड़े प्राणियोंके समान जीवोंको पंचेन्द्रिय और मनुष्यके समान जीवोंको छः इन्द्री बताया है। यह विज्ञानके जैन दार्शनिक सिद्धान्तका रूप है इसे बताना तथा इस पर जोर देना मेरे लिये आवश्यक नहीं है। जीवोंका यह विभाग संस्कृत और तामिल भाषाके जैन तत्व ज्ञानके

सभी प्रमुख ग्रन्थोंमें पाया जाता है । मेरुमन्दिरपुराण और नीलकेशी जैसे दो प्रधान जैनदार्शनिक ग्रन्थोंमें जीवोंका इस प्रकार वर्णन है। यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि यह जैनियोंके जीव-विषयक ज्ञानका उल्लेख करता है। इससे यह बात स्वतः सिद्ध होती है कि ग्रन्थकार जैन तत्वज्ञानमें अति निपुण था। इस निष्कर्षके समर्थनमें मुख्य साक्षी रूप एक दूसरी बात है। उसके सम्बन्धमें शोधक विद्वानोंका ध्यान नहीं गया; किन्तु इस विषयमें विचार होना चाहिये। उसी मरबियलके दूसरे सूत्रमें टोलकाप्पियमूने मुदलनूलं और 'वालीनूलं'--मूल और प्रारम्भिक ग्रंथ, गौण तथा संग्रहीत ग्रन्थके रूपमें तामिल परम्पराके अनुसार साहित्य के ग्रन्थोंका विभाग किया है। जब वह मुख्य और मूल शास्त्र अर्थात् मुदलनूलंकी व्याख्या करता है, तब वह कहता है कि जो ज्ञानके अधिपति द्वारा कर्मोंसे पूर्ण मुक्त होने पर प्रकाशित किया जाता है, वह कर्मक्षयके बाद सर्वज्ञके द्वारा प्रकाशित ज्ञान है। इस बात पर जोर देनेकी आवश्यकता नहीं है कि जैन परम्पराके अनुसार प्रायः प्रत्येक ग्रन्थकार अपने ज्ञान का आदि स्रोत पूर्वाचार्योंको, और गणधरोंके द्वारा समवशरणमें धर्मका प्रतिपादन करनेवाले स्वयं तीर्थंकरोंको बतावेगा। परन्तु जैन परम्परासे परिचित प्रत्येक निष्पक्ष विद्वानको यह स्पष्ट विदित हो जायगा, कि मूल ग्रन्थकी इस परिभाषामें पूर्ण ज्ञानके आदि स्रोत सर्वज्ञ वीतरागका उल्लेख किया है। इन सब बातोंसे यह स्पष्ट होगा कि प्रतिपक्षी विचारकी अपेक्षा लेखकका जैन होना अधिक संभव है। जिन लोगोंने इस बातके निषेध करनेका प्रयत्न किया है उन्होंने अपने कथनके समर्थनमें कोई गम्भीर युक्ति नहीं पेश की है। एक आलोचक इस बात का उल्लेख करता है कि जीवका विभाग जैसा इस ग्रन्थ में है, वैसा एक अप्रसिद्ध तंत्र शास्त्रमें विद्यमान है,किन्तु इस सम्बन्धके पद्य पूरी तौर पर उद्धृत नहीं किये जाते तर्कके लिये यह मान लेने पर भी कि उसका उल्लेख उस तन्त्र ग्रंथमें है, वह साक्षी संदेहास्पद होगी। यह बात बताना यहां आवश्यक है कि इन्द्रियोंके आधार पर किया गया यह जीवोंका विभाग अन्य दर्शनों अथवा भारतकी दूसरी विचार पद्धतियोंमें नहीं पाया जाता है। यह विशेष बात जैनदर्शनमें और केवल जैनदर्शनमें ही पाई जाती है। इस सम्बन्धमें विशेष वाद विवादको हम इस प्रकारकी शोधमें सुरुचि रखनेवाले सुयोग्य विद्वानोंके लिये छोड़ते हैं। इस स्थितिमें हमारे लिये इतना लिखना ही पर्याप्त है कि यह व्याकरणका ग्रन्थ जो कि अत्यन्त पुरातन तामिल ग्रन्थोंमें एक है, प्रायः एक ऐसे जैन विद्वान द्वारा रचा गया था, जो संस्कृत व्याकरण और साहित्यमें समान रूपसे प्रवीण था। उस ग्रंथकी रचना कब हुई, इस विषयमें पर्याप्त विवाद है, किन्तु हमें उस विवादमें भाग लेनेकी आवश्यकता नहीं है।

इस व्याकरण ग्रन्थमें इलुत्तु (अक्षर) सोल् (शब्द) और पोरुल (अर्थ) नामके तीन बड़े अध्याय हैं प्रत्येक अध्यायमें ९ एयल (विभाग) हैं और कुल १६ १२ सूत्र हैं। यह तामिल भाषाके बादके व्याकरण ग्रंथोंकी जड़ है। संस्कृत व्याकरणके प्रतिकूल जिसमें पहले और दूसरे ही अध्याय होते हैं, इसमें तीन अध्याय हैं और तीसरा पोरुलके विषयमें है। इस तीसरे अध्याय में व्याकरणके सिवाय अन्य बहुत विषय रहते हैं जिसमें प्रेम एवं युद्धका वर्णन रहता है। इस प्रकार आदिद्रविड़ लोगोंके पुनर्गठनके लिये इसमें उपयोगी अनेक संकेत पाये जाते हैं।

यह कहा जाता है कि इस ग्रन्थकी पांच टीकाएँ हैं जो (१) एलम पूर्नर (२) पराशिरियर (३) सेनवरैयर

(४) नच्चीनार्किनियर (५) कल्लादरेकी लिखी हुई हैं इनमें से प्रथम लेखक सब टीकाकारोंमें प्राचीन है। पश्चात्वर्ती लेखकोंने आमतौर पर 'टीका कार' के नाम से उसका उल्लेख किया है। परम्पराके अनुसार यह तामिल भाषाके व्याकरणका महान् ग्रन्थ द्वितीय संगम कालका कहा जाता है। हमें विदित है कि विद्यमान सब ही तामिल ग्रन्थ अंतिम तथा तृतीय संगम् कालके कहे जाते हैं। अतः इस टोलकाप्पियमको करीब २ संपूर्ण उपलब्ध तामिल साहित्यका पूर्ववर्ती मानना चाहिये।

इस परंपराको स्वीकार करना आश्चर्यकी बात होगी, क्योंकि यह संभव नहीं है कि किसी भाषाके अन्य ग्रन्थोंके पूर्वमें उसका व्याकरण शास्त्र हो। वास्तवमें व्याकरण तो भाषाका एक विज्ञान है, जिसमें साहित्यिक रिवाज ग्रंथित किए जाते हैं; इसलिये वह उस भाषामें महान् साहित्यके अस्तित्वको बताता है। तामिल वैयाकरण भी इस बातको स्वीकार करते हैं। वे पहिले साहित्यको और बादमें व्याकरणको बताते हैं। इसलिये यदि हम इस परंपराको स्वीकार करते हैं कि टोलकाप्पियम् संगमकालका मध्यवर्ती है तब हमें उसके पूर्वमें विद्यमान् महान् साहित्यकी कल्पना करनी पड़ेगी, जो किसी कारणसे अब पूर्ण लुप्त हो गया है। यदि हम द्रविड़ सभ्यताकी पूर्व अवस्था पर विचार करें, तो इस प्रकारकी कल्पना बिल्कुल असंभव नहीं होगी। अशोक समयके लगभग तामिल प्रदेशमें चेरचोल और पांड्य नामके तीन विशाल साम्राज्य थे। अशोक इन साम्राज्योंकी विजयका कोई उल्लेख नहीं करता है। अशोकके साम्राज्यके आस पास ये मित्र राज्योंकी सूची में बताए गये हैं। इतिहासके विद्यार्थी इन बातोंसे भली भाँति परिचित हैं, कि तामिल देशमें बहुत सुन्दर बंदरगाह है, यहाँके लोग भूमध्यसागरके आसपासके यूरोपियन राष्ट्रोंके साथ समुन्नत सामुद्रिक व्यापार करते थे, तामिल भाषाने वैदेशिक शब्द भंडारको महत्वपूर्ण शब्द प्रदान किये थे, और तामिल देशके अनेक स्थानोंमें उपलब्ध रोमन देशीय स्वर्ण मुद्राएं रोमन साम्राज्यसे सम्बन्धको सूचित करती हैं। इसके साथमें मोहन जोदरो, हरप्पाकी हालकी खुदाई और खोज आर्योंकी पूर्ववर्ती सभ्यताको बताती है और हमें उस उच्च कोटिकी सभ्यताका ज्ञान कराती है, जो आदि-द्रविड़ लोगोंने प्राप्त की थी। जब तक हम इस आदि-द्रविड संस्कृतिके पुनर्गठनके सम्बन्धमें उचित साक्षी नहीं प्राप्त करलें, तब तक तो ये सब बातें कल्पना ही रहेंगी। उपलब्ध तामिल साहित्य बहुधा तृतीय संगम कालका है, अतः अनेक ग्रन्थ, जिनके सम्बन्धमें हमें विचार करना है, इस कालके होने चाहियें। यह समय प्रायः ईसासे दो शताब्दी पूर्वसे लेकर सातवीं सदी तक होगा। चूंकि संगम या एकेडेमी एक संदेहापन्न वस्तु है इसीलिये संगम शब्द तामिलोंके इतिहासके काल विशेष को द्योतित करनेके लिए एक प्रचलित शब्द है।

श्रीयुत शिवराज पिल्लेके द्वारा सूचित तामिल साहित्यके प्राकृतिक, नैतिक और धार्मिक ऐसे तीन सुगम काल भेद माने जा सकते हैं, क्योंकि ये व्यापकरूपसे तामिल साहित्यकी उन्नतिके द्योतक हैं। कुरल और नालदियार जैसे नीति ग्रन्थोंके उत्तरवर्तीसाहित्यमें बड़ी स्वतंत्रताके साथ अवतरण दिए गए हैं। अतः यह मानना एकदम मिथ्या नहीं होगा, कि काव्यसाहित्यकी अपेक्षा नैतिक साहित्य पूर्ववर्ती प्रतीत होता है। इस नैतिक साहित्य समूहमें जैनाचार्योंका प्रभाव विशेषरीतिसे विदित होता है। कुरल और नालदियार नामके दो महान ग्रंथ उन

जैनाचार्योंकी कृति हैं जो तामिलदेशमें बस गए थे।

कुरल—तामिल भाषी जनतामें प्रचारकी दृष्टिसे विचार करने पर 'कुरल' नामका नीतिग्रंथ तामिल साहित्यमें, सबसे अधिक प्रधान है। इसकी रचना जिस छंदमें की गई है, वह 'कुरलवेणबो' के नामसे प्रसिद्ध है और तामिल साहित्यका खास छन्द है। 'कुरल' शब्दका अर्थ दोहाविशेष (Short) है, जो वेणवा नामक दोहेसे भिन्न है। यह तामिल साहित्यका अपूर्व छंद है। पुस्तकका नाम कुरल उसमें प्रयुक्त छन्दके कारण पड़ा। यह अहिंसा सिद्धान्तके आधार पर बनाया गया है। संपूर्ण ग्रन्थमें अहिंसा धर्मकी स्तुति की गई है और विपरीत बिचारोंकी आलोचना की गई है। इस ग्रंथको तामिलवासी इतनी प्रधानता देते हैं कि वे इसके लिये विविध नामोंका प्रयोग करते हैं, जैसे उत्तर वेद, तामिल वेद, ईश्वरीय ग्रंथ, महान् सत्य, सर्व देशीय वेद इत्यादि। तामिल प्रान्तके प्रायः सभी संप्रदाय इस रचनाको अपनी २ बताते हैं। शैवोंका दावा है कि यह शैव लेखककी कृति है। वैष्णव लोग इसे अपनी बताते हैं। पोप नामक पादरी, जिनने इसका अंग्रेजी-अनुवाद किया है, यहां तक कहता है कि यह ग्रंथ ईसाई धर्मसे प्रभावित हुए लेखककी रचना है। भिन्न २ जातियाँ इस ग्रंथके कर्तृत्वके विषयमें एक दूसरे से होड़ ले रही हैं। इससे ग्रंथकी महत्ता एवं प्रधानता स्वतः प्रगट होती हैं। इस भांति विविध अधिकार प्रदर्शकोंके मध्यमें जैनियोंका कथन है कि यह तो जैनाचार्यकी कृति है। जैनपरम्परा इस महान् ग्रन्थका सम्बन्ध कुंदकुंदाचार्य अपरनाम एलाचार्यसे बताती है। कुंदकुंदाचार्यका समय ईसासे पूर्वकी अर्धशताब्दी के उत्तर भाग और ईसवी सनकी पहली अर्धशताब्दीके पूर्व भागमें संनिहित हैं। हमने इस बातका उल्लेख किया है कि दक्षिण पाटलीपुत्रमें द्राविड़ संघके प्रमुख श्री कुंदकुंदाचार्य थे।

अपना निर्णय प्राप्त करनेके लिए हमें केवल इस परंपराका ही अवलंबन नहीं करना है। अपनी धारणा के प्रमाणमें हमारे पास समुचित अंतरंग तथा परिस्थिति जन्य साक्षी (Circumstantial evidence) विद्यमान है। जो भी निष्पक्ष विद्वान् इस ग्रंथका सूक्ष्मताके साथ परीक्षण करेगा, उसे यह बात पूर्णतया स्पष्ट विदित हो जायगी, कि यह ग्रंथ अहिंसा-धर्मसे परिपूर्ण है और इसलिये यह जैनमस्तिष्ककी उपज होना चाहिये। इस विषय पर अभिमत व्यक्त करने योग्य अधिकृत निष्पक्ष तामिल विद्वानोंने इस ग्रन्थके कर्तृत्वके सम्बन्धमें इसी प्रकारका अभिमत प्रगट किया है; किन्तु वैज्ञानिक शोधके आधार पर किए गए निर्णयको बहुतसे तामिल विद्वान् स्वीकार करना नहीं चाहते, इस विरोधका मूल कारण धार्मिक भावना है। हिन्दूधर्मके पुनरुद्धार कालमें (लगभग सप्तम शताब्दिमें) जैनधर्म और हिन्दुओंके बलिसमर्थक वैदिक धर्मका संघर्ष इतना अधिक हुआ होगा, कि उसकी प्रतिध्वनि अब तक भी अनुभवमें आती है। **इस द्वन्द्वमें हिन्दू पुनरुद्धारकोंके द्वारा जैनाचार्योंकी रचनाएं दूषित की गईं**, कारण उन हिन्दुओंका समर्थक नवदीक्षित पांड्य नरेश था। कहा जाता है कि **इसके फलस्वरूप अनेक जैनाचार्योंका प्राणान्त फांसीके द्वारा हुआ**। हम इस बातका पूर्ण रीतिसे निश्चय करनेमें असमर्थ हैं कि इसमें कितना इतिहास है और कितना उर्वर मस्तिष्कका उत्पादन है परन्तु **अब तक भी मदुरा के मन्दिरोंकी भित्तियों पर जैनियोंकी हत्या वाली कथाके चित्र विद्यमान हैं और अब भी प्रतिद्वन्द्वी धर्म (जैन धर्म) का पराभव और विध्वंस बताने वाले**

वार्षिक उत्सव मनाये जाते हैं । यह बात आदि-जैनों के विषयमें तामिल विद्वानोंके दृष्टिकोणको समझनेमें सहायक होगी। इससे यह बात स्पष्ट है, कि वे इस सूचना मात्रका विरोध करते हैं, कि महान् नीतिशास्त्र जैनविद्वानके द्वारा रचित होगा।

एक परम्पराके आधार पर इस ग्रंथके लेखक कोई तिरुवल्लुवर कहे जाते हैं। तिरुवल्लुवरके सम्बन्धकी काल्पनिक कथाके घटक आधुनिक लेखकोंकी कल्पनाके द्वारा जो बताया गया है। उससे अधिक उसके सम्बन्ध में अज्ञात है। तिरुवल्लुवरकी जीवनीके सम्बन्धमें अनेक मिथ्या बातें बताई गई हैं, यथा वह चाण्डालीका पुत्र था। सभी तामिल लेखकोंका समकालीन एवं बन्धु था। इस बातका कथनमात्र इसके मिथ्यापनेको घोषित करता है। किन्तु आधुनिक अधिक उत्साही तामिल विद्वानोंने उसे ईश्वरीय मस्तक तक ऊँचा उठाया है, उसके नाम पर मंदिर बनाएँ हैं तथा ऐसे वार्षिक उत्सवोंका मनाना प्रारंभ किया है, जैसे हिन्दू देवताओं के सम्बन्धमें मनाए जाते हैं। इसका लेखक एक हिन्दू देवता समझा जाता है, और यह रचना उस देवता द्वारा प्रकाशित समझी जाती है । साधारणतया इस प्रकारके क्षेत्रोंमें ऐतिहासिक आलोचनाके सिद्धान्तोंका प्रयोग कोई नहीं सोचेगा। यह बात तो यहाँ तक है, कि जब कभी ग्रन्थके प्रमेयके सूक्ष्म परीक्षणके फलस्वरूप कोई बात सुझाई जाती है, तब वह धार्मिक जोशपूर्ण तीव्रताके साथ निषिद्ध की जाती है । अनेक आलोचक नामधारी व्यक्ति, जिन्होंने इस महान् रचनाके सम्बन्धमें थोड़ा बहुत लिखा है, इस प्रकारकी विचित्र बौद्धिक स्थिति रखनेमें सावधान रहे हैं जिस प्रकार 'सेमुअल जानसन' 'हाउस आफ कामन्स' की कार्यवाही को लिखते समय सावधान रहा था। वह इस बातको ध्यानपूर्वक देखता था, कि 'विंग' (Whigs) लोगोंको उससे अधिक लाभ न हो। जबकि तामिल विद्वानोंकी साधारण मनोवृत्ति इस प्रकारकी हो, जब वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक शोधकी यथार्थ भावना शैशवमें हो, तब यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, कि तामिल साहित्य नामकी कोई अर्थवान वस्तु हमारे पास न हो । अतः हम जैनसाहित्यके ऐतिहासिक वर्णनको पेश करनेके प्रयत्नमें असमर्थ हो जाते हैं।

इस विषयान्तर बातको छोड़कर ग्रंथका परीक्षण करते हुए हमें स्वयं पुस्तकमें आई हुई कुछ उपयोगी बातें बतानी हैं। इस पुस्तकमें तीन महान् विषय हैं। (अरम्) (धर्म) पोरुल (अर्थ,) इनबम् (काम) ये तीनों विषय विस्तारके साथ इस प्रकार समझाये गये हैं, जिसके ये मूलभूत अहिंसा सिद्धान्तके साथ सम्बद्ध रहें। अतः ये संज्ञाएँ साधारणतया हिन्दू धर्मके ग्रन्थोंमें वर्णित संज्ञाओंसे थोड़ी भिन्न हैं, इस विषय पर ज़ोर देनेकी आवश्यकता नहीं है। हिन्दू धर्म की बादकी धार्मिक पद्धतियोंमें वेद-विहित पशुबलिकी क्रिया पूर्णरूपेण पृथक नहीं की जासकी कारण वे वैदिक धर्म-सम्बन्धी क्रियाकाण्ड पर अवलंबित हैं, इसलिये धर्म शब्दका अर्थ उनके यहां वर्णाश्रम धर्म ही होगा, जिसका आधार वैदिक बलिदान होगा। जैन, बौद्ध तथा सांख्यदर्शन नामक तीन भारतीय धर्म ही वैदिक बलिदानके विरुद्ध थे। पुनरुद्धारके कालमें इन तीन दर्शनोंके प्रतिनिधि पूर्व तामिल देशमें विद्यमान थे। ग्रंथके आदिमें ग्रंथकार 'धर्म' के अध्यायमें अपना मत इस प्रकार व्यक्त करते हैं, कि सहस्रों यज्ञोंके करनेकी अपेक्षा किसी प्राणीका वध न करना और उसे भक्षण न करना अधिक अच्छा और श्रेयस्कर है। यह एक ही पद्य इस बातको बतानेको पर्याप्त है कि लेखक कभी भी

याज्ञिक बलिदानको चुपचाप सहन न करेगा । यह तो संस्कृतके वाक्य 'अहिंसा परमोधर्मः' की व्याख्या है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक शैव विद्वान्ने उपर्युक्त पद्यका उद्धरण देकर यह सिद्ध करना चाहा है कि ग्रंथकार वैदिक बलिदान रूप धर्मको मानने वाले थे।

शाकाहारका वर्णन करने वाले दूसरे अध्यायमें ग्रन्थकार स्पष्ट शब्दोंमें कसाईके यहाँसे मांस खरीदनेके बौद्धोंके सिद्धान्तको घृणित बताता है। बौद्ध लोग, जो अहिंसा सिद्धान्तका नाम मात्रको पालन करते हैं, इस बातसे अपने आपको यह कहते हुए संतुष्ट करते हैं, कि उन्हें अपने हाथोंसे प्राणि बध नहीं करना चाहिये, किंतु वे माँस विक्रय-स्थलसे माँस खरीद सकते हैं। कुदरतके रचयिता इस बातको स्पष्टतया बताते हैं कि कसाईके व्यवसायकी वृद्धिका कारण केवल माँस की माँग है। कसाईका स्वार्थ केवल पैसा कमाना है और इसलिये वह विशेष व्यवसायको करता है, जो मांग और खपतके सिद्धान्त पर स्थित है । इसलिए भोजनके निमित्त प्राणी-हिंसाका दायित्व प्रधानतया तुम्हारे ही ऊपर है, न कि कसाई पर। जब कि वैदिक धर्म-विहित बलिदान और अहिंसा सिद्धान्तका सुलभ भाव बने माँसाहारके करनेकी बौद्धोंकी प्रवृत्तिका यहाँ स्पष्टतया निराकरण है, तब अपनयन अथवा पारिशैष्य पद्धतिके अनुसार यह स्पष्ट है कि ग्रंथमें निरूपित सिद्धान्तसे समता रखने वाला जैनियोंका अहिंसा सिद्धान्त ही है। एक विद्यमान् विख्यात् तामिल विद्वान का कथन है, कि यह ग्रंथ बौद्धायनके धर्मशास्त्रका शुद्ध अनुवाद है। यद्यपि इस ग्रंथमें संस्कृत शब्दोंकी बहुलता है, और परंपरागत कुछ सिद्धान्तोंका वर्णन है, फिर भी यह निश्चय करना सत्य नहीं है कि यह संस्कृत साहित्यमें प्रकाशित बातकी प्रतिध्वनि मात्र है क्योंकि इनमें के अनेक सिद्धान्त अहिंसाके प्रकाशमें पुनः समझाये गये और उन पर जोर दिया गया है। यहां केवल दो बातोंको बताना ही पर्याप्त है। यह बौद्धायन धर्मशास्त्र, चूंकि परम्परागत वर्णाश्रम पर अवलम्बित है, परम्परागत चार जातियों और उनके कर्तव्योंका समर्थन करता है। धर्मकी इस व्याख्याके अनुसार कृषि कर्म अंतिम शूद्र वर्णके लिये ही छोड़ा गया है और इसलिये कृषि-कर्मसे तनिक भी सम्बन्ध रखना ऊपरकी जातियोंके लिये निषिद्ध होगा। प्रत्युत् इसके कुरलके रचयिताने व्यवसायोंमें कृषिको आद्य स्थान प्रायः इसलिये दिया है कि वह बेलालों अथवा वहांके कृषकोंमेंसे एक है। क्योंकि उसका कथन है—**सर्वोत्कृष्ट जीविका कृषि-कर्म विषयक है, अन्य प्रकारके सब जीवनोपाय परावलम्बी हैं, और इससे वे कृषि कर्मके बादमें आते हैं**। यह बात संस्कृतके धर्मशास्त्रसे ली गई है, ऐसा कहना किसी तरह भी गले नहीं उतर सकता। धर्मशास्त्रोंमें कथित एक बात और मनोरंजक है। वह है गृहस्थोंके द्वारा अतिथियोंके सत्कारके सम्बन्धमें। इस प्रकारके अतिथि सत्कारमें स्थूल गोवत्सके वधकी बात सदा विद्यमान रहती है। बौद्धायनके धर्मशास्त्रमें ऐसे जानवरोंकी सूची दी गई है, जिनका वध अतिथि-सत्कारके निमित्त किया जाना चाहिये। जो लोग वैदिक विधिको धर्म स्वीकार करते हैं, वे इस बात पर दृढ़ विश्वास करते हैं, कि यह कार्य धर्मका मुख्य अंग है, और उसका पालन न करने से अतिथियों द्वारा शाप प्राप्त होता है। इस सम्बन्धमें कुरलके अध्यायको पढ़ने वाले प्रत्येक पाठकको निश्चय होगा, कि हिंदुओंके धर्मशास्त्रोंमें कथित बातसे यहां धर्मका अर्थ बिल्कुल भिन्न है। इससे हमें इस कथनका परित्याग करना पड़ता है कि यह ग्रंथ तामिलज्ञ जनताके

कल्याणके लिये किया गया धर्मशास्त्रोंका अनुवाद मात्र है।

परिस्थिति जन्य साक्षीकी ओर ध्यान देने पर हमें ये बातें विदित होती हैं, कि नीलकेशी नामक ग्रन्थका जैन-टीकाकार इस सरलतासे अवतरण देता है और जब भी वह अवतरण उद्धृत करता है, तब अवतरण के साथ लिखता है "जैसा कि हमारे शास्त्रमें कहा है" इससे यह बात स्पष्ट है कि टीकाकार इस तामिल भाषा में महत्वपूर्ण जैनशास्त्र समझता था। दूसरी बात यह है कि तामिल भाषाके अजैन विद्वान् कृत "प्रबोध-चन्द्रोदय" नामक ग्रन्थसे भी यही ध्वनि निकलती है। यह तामिल-रचना संस्कृतके नाटक प्रबोधचंद्रोदयके आधार पर बनी है, यह बात स्पष्ट है। यह तामिल ग्रन्थ चार पंक्ति वाले विरुत्तम छन्दमें लिखा गया है। यह नाटकके रूपमें है, जिसमें भिन्न-भिन्न धर्मोंके प्रतिनिधि रङ्ग-भूमि पर आते हैं। प्रत्येक अपने धर्मके सारको बताने वाले पद्यको पढ़ता हुआ प्रविष्ट होता है। जब जैन-सन्यासी स्टेज पर आता है, तब वह कुरलके उस विशिष्ट पद्यको पढ़ता है, जिसमें अहिंसा-सिद्धान्तका गुण-गान इस रूपमें किया गया है, भोजनके निमित्त किसी भी प्राणीका बध न करना सहस्रों यज्ञोंके करनेकी अपेक्षा अधिक अच्छा है। यह सूचित करना असत्य नहीं है कि इस नाटककारकी दृष्टिमें कुरल विशेषतया जैन-ग्रन्थ था, अन्यथा वह इस पद्यको निर्ग्रन्थवादीके मुखसे नहीं कहलाता। यह विवेचन पर्याप्त है। हम यह कहते हुए इस बहसको समाप्त करते हैं कि इस महान् नीतिके ग्रन्थकी रचना प्रायः एक महान् जैन-विद्वान्के द्वारा ईस्वी सनकी प्रथम शताब्दीके करीब इस ध्येयको लेकर हुई है, अहिंसा-सिद्धान्तका उसके सम्पूर्ण विविध रूपोंमें प्रतिपादन किया जाय।

यह तामिल-ग्रन्थ, जिसमें तामिल-साहित्यके पांडित्यका सार भरा है, तीन विभागों तथा १३३ अध्यायोंको लिये हुए है। प्रत्येक अध्यायमें दस पद्य हैं। इस तरह दोहारूपमें १३३० पद्य हैं। इसकी तीन अथवा चार महत्वकी टीकाएं हैं। इनमें एक टीका महान् टीकाकार नच्चिनारक्किनियर रचित है। ऐसा अनुमान है कि वह जैन परम्पराके अनुसार है, किन्तु दुर्भाग्य है कि वह विश्वके लिये अलभ्य है। जो टीका अब प्रचलित है उसके रचयिता एक परिमेलअलगर हैं और यह निश्चयसे नच्चिनारक्किनियरकी रचनासे बादकी है, और यह उससे अनेक मुख्य बातोंके अर्थ करनेमें भिन्न मत रखती है। हाल ही में माणक्कुदवर-रचित एक दूसरी टीका छपी थी। तामिल-साहित्यके अध्ययन-कर्ताओंको आशा है कि महान नच्चिनारक्किनियरकी टीका प्राप्त होगी और प्रकाशित होगी, किन्तु अबतक इसका कुछ भी पता नहीं चला है।

यह ग्रंथ प्रायः सम्पूर्ण यूरोपियन भाषाओंमें अनुवादित हो चुका है। रेवरेण्ड जी. यू. पोपका अंग्रेजी अनुवाद बहुत सुंदर है। यह महान् ग्रन्थ इसके साथमें नालदियार नामका दूसरा ग्रन्थ, जिसका हम हाल ही में वर्णन करेंगे, तामिल देशीय मनुष्योंके चरित्र और आदर्शोंके निर्माणमें प्रधान कारण रहे हैं। इन दो नीतिके महान ग्रन्थोंके विषयमें डाक्टर पोप इस प्रकार लिखते हैं:—

"मुझे प्रतीत होता है कि इन पद्योंमें नैतिक कृतज्ञताका प्रबल भाव, सत्यकी तीव्र शोध, स्वार्थ-रहित, तथा हार्दिक दानशीलता एवं साधारणतया उज्ज्वल उद्देश्य अधिक प्रभावक है। मुझे कभी-कभी ऐसा अनुभव हुवा कि मानों इनमें ऐसे मनुष्योंके लिये भंडार रूपमें आशीर्वाद भरा हैं जो इस प्रकारकी रचनाओंसे

अधिक आनन्दित होते हैं और इस तरह सत्यके प्रति क्षुधा और पिपासाकी विशेषताको घोषित करते हैं। वे लोग भारतवर्षके लोगोंमें श्रेष्ठ हैं तथा कुरल एवं नालदी ने उन्हें इस प्रकार बननेमें सहायता दी है।"

अब हमें अपना ध्यान पिछले उल्लिखित ग्रन्थ नालदियारकी ओर देना चाहिये। कुरल और नालदियार एक दूसरेके प्रति टीकाका काम करते हैं और दोनों मिलकर तामिल-जनताके सम्पूर्ण नैतिक तथा सामाजिक सिद्धान्तके ऊपर महान् प्रकाश डालते हैं।" नालदियार का नामकरण ठीक कुरलके समान उसके छन्दके कारण हुआ है। नालदियारका अर्थ वेणबा छन्दकी चार पंक्तियोंमें की गई रचना है। इस रचनामें चार सौ चौपाई हैं और इसे वेलालरवेदम्-कृषकोंकी बाइबिल भी कहते हैं। यह ग्रंथकारकी कृति नहीं है। परम्परा कथनके अनुसार प्रत्येक पद्य एक पृथक् जैन मुनिके द्वारा रचा गया है। प्रचलित परम्परा संक्षेपसे इस प्रकार है। एक समयकी बात है उत्तरमें दुष्काल पड़नेके कारण आठ हजार जैनमुनि उत्तरसे पांड्य देशकी ओर गये, जहांके नरेशोंने उनको सहायता दी। जब दुष्कालका समय बीत गया तब वे अपने देशको लौटना चाहते थे। किन्तु राजाकी इच्छा थी कि उसके दरबारमें ये विद्वान बने रहें। अन्तमें उन साधुओंने राजाको कोई खबर न करके गुप्तरूपसे बाहर जानेका निश्चय किया। इस तरह एक रात्रिको समुदाय रूपसे वे सब रवाना हो गये। दूसरे दिन प्रभात कालमें यह विदित हुआ कि प्रत्येक साधुने अपने आसन पर ताड़ पत्र पर लिखित एक २ चौपाई छोड़ दी थी। राजाने उनको वैगी नदीमें फेंकने की आज्ञा दी किन्तु जब यह विदित हुआ कि नदीके प्रभावके विरुद्ध कुछ ताड़ पत्र तैरते हुये पाये गये और वे तट पर आगये, तब राजाकी आज्ञासे वे संगृहीत किये और इस संग्रहको नालदियारके नामसे कहा गया। हम ऐसी स्थितिमें नहीं हैं कि इस परम्परा कथनमें विद्यमान ऐतिहासिक सत्यके अंशकी जाँच करें। यदि हम इस परम्परा कथन पर विचार करें जो हमें इन आठ हजार जैन साधुओंको भद्रबाहुके अनुयायियोंसे संबंधित करना होगा, जो उत्तर भारतमें बारह वर्ष दुष्कालके कारण दक्षिणकी ओर गये थे। ऐसी स्थितिमें इस ग्रंथका निर्माण ईसवी सदीसे ३०० वर्ष पूर्व होना चाहिये। इस सम्बन्धमें हम कोई सिद्धान्त नहीं बना सकते। हम कुछ निश्चयके साथ इतना ही कह सकते हैं कि वह तामिल भाषाके नीतिके अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थोंमें एक है और प्रायः कुरलका समकालीन अथवा उससे कुछ पूर्ववर्ती है। बिखरे हुये चारसौ पद्य कुरलके नमूने पर एक विशिष्ट ढंग पर व्यवस्थित किये गये हैं। प्रत्येक अध्याय में दस पद्य हैं। पहला भाग अरम् (धर्म) पर है उसमें १३ अध्याय तथा १३० चौपाई हैं। दूसरे भाग पोरुल (अर्थ) में २६ अध्याय तथा २६० चौपाई हैं तथा 'काम' (Love) पर लिखे गये तीसरे विभागमें १० चौपाई हैं इस प्रकार ४०० पद्य तीन भागोंमें विभक्त हैं। इस क्रमके सम्बन्धमें एक परम्परा कहती है कि यह पांड्य नरेश उग्रपेरुवालुतिके कारण हुई किन्तु दूसरी परम्परा पदुमनार नामक जैन विद्वानको इसका कारण बताती है। तामिल भाषाके अष्टादस नीति ग्रन्थोंमें कुरल और नारदियाल अत्यन्त महत्व पूर्ण समझे जाते हैं इस ग्रन्थमें निरुपित नैतिक सिद्धान्त जाति अथवा धर्मके भेदोंको भुलाकर सभी लोगोंके द्वारा माने जाते हैं। तामिल-साहित्यके परम्परागत अध्ययनके लिये इन दोनों ग्रन्थोंका अध्ययन आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति तब तक तामिल विद्वान कहे जानेका अधिकारी नहीं है जब तक कि वह इन दोनों महान् ग्रंथोंमें प्रवीण न हो।

क्रमशः

अहिंसा-सम्बंधी एक महत्वपूर्ण प्रश्नावली

अहिंसाका प्रश्न राष्ट्रीय दृष्टिसे निःसन्देह एक बड़े ही महत्वका प्रश्न है। वह भारतके ही नहीं किन्तु अन्य देशोंके लिये भी जहाँ युद्धका दावानल धँधक रहा है और धँधकने वाला है, आजकल गंभीर विचारका विषय बना हुआ है। कांग्रेसने अहिंसाकी नीतिको अंगीकार कर उसका हालमें जिस रूपसे परित्याग किया है और उस पर महात्मा गाँधीजीने कांग्रेससे अलग होकर अपना जो वक्तव्य दिया है, उससे इस प्रश्न पर अधिक गहराईके साथ विचार करनेकी और भी ज्यादा आवश्यकता हो गई है। जैनियोंका अहिंसा सिद्धान्तके विषयमें खास दावा है और वे अपने धर्मको उसका मूल स्रोत बतलाते हैं, इसलिये उस की उलझनोंको सुलझाना उनका पहला कतव्य है। बड़ी खुशीकी बात है कि कलकत्तेके श्रीविजयसिंहजी नाहर आदि कुछ जैन सज्जनोंने जैनदृष्टि से इस विषय पर गहरा विचार करनेके लिये एक आन्दोलन उठाया है और एक पत्र द्वारा अपनी प्रश्नावलीको समाजके सैंकड़ों गण्यमान्य विद्वानोंके पास भेजा है। 'तरुण ओसवाल' में छापा है और दूसरे पत्रोंमें भी छपाया जा रहा है। आपका वह पत्र नीचे दिया जाता है। साथमें महात्मा गाँधीजीका वह विस्तृत भाषण भी है, जिसका इस पत्रमें उल्लेख है और जिस पर खास तौरसे ध्यान देनेकी पत्रमें प्रेरणा की गई है। आशा है 'अनेकान्त'के विज्ञ पाठक महात्माजीके पूरे भाषणको गौरके साथ पढ़ेंगे और फिर जैनदृष्टिसे उस प्रश्नावलीको हल करनेका पूरा प्रयत्न करेंगे, जो पत्र में दी हुई हैं। इससे देशके सामने जो प्रश्न उपस्थित है उसके हल होनेमें बहुत कुछ सहायता मिल सकेगी।

—सम्पादक]

हम यह पत्र आपकी सेवामें एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न की चर्चाके विषयमें भेज रहे हैं और इस छूटके लेनेकी क्षमा चाहते हैं।

आज देश भरमें इस बातकी चर्चा हो रही है कि आया बाहरी आक्रमण या अन्दरूनी झगड़ोंसे देशकी और देशवासियोंकी रक्षा बिना फ़ौज-हथियारोंके और अहिंसक तरीकेसे हो सकती है या नहीं। जैसा कि आपको विदित है, आज पिछले २५ वर्षसे हिन्दुस्तान की आज़ादीके लिये राजनैतिक क्षेत्रमें भी अहिंसाके सिद्धान्तका प्रयोग हो रहा है। इसके पहले तक हमारे ख़यालमें अहिंसाधर्म व्यक्तिके निजी जीवनमें और उसमें भी एक संकुचित दायरेमें सीमित रहा, पर यह स्पष्ट है कि जब तक अहिंसाके सिद्धान्तका हम हमारे व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवनके सभी क्षेत्रोंमें उपयोग न करें, यह सिद्धान्त अधूरा और पङ्गु ही रहेगा। जीवनके अमुक क्षेत्रमें तो दिन रातके २४ घंटोंमें से अमुक समयमें ही अहिंसाका पालन और शेषमें हिंसा की छूट, हमें तो यह केवल अँधा ज्ञानहीन धर्मपालन ही मालूम होता है। इसमें कायरता भी मालूम होती है। हमारा मतलब यह नहीं है कि कोई भी आदमी पूर्ण अहिंसक रूपसे जीवन व्यतीत कर सकता है। यह तो असम्भव सी बात है। क्योंकि जीवनके लिये हिंसा किसी न किसी रूपमें अनिवार्य है, पर अहिंसाको कुछ क्षेत्रोंमें ही सीमित कर देना और दूसरे क्षेत्रोंमें हिंसा की प्रधानता और छूट मान लेना तो अहिंसाके मूल पर आघात करना है, हमारा ऐसा ख़याल है। ऐसी स्थितिमें अहिंसा केवल एक विडम्बना मालूम होती है। इस सिलसिलेमें हम आपका ध्यान महात्मा गाँधीके

'वीरोंकी अहिंसा' शीर्षक भाषणकी ओर आकर्षित करते हैं (यह भाषण अनेकान्तकी इसी किरणमें अन्यत्र प्रकाशित है) जिसमें अहिंसाकी व्यापक और विशद,पर साथ ही सुगम व्याख्या की गयी है।

आज भारतवर्ष ही नहीं, सारे संसारका ध्यान अहिंसाके सिद्धान्तकी ओर गया है। ऐसे अवसर पर अहिंसाको परमधर्म मानने वाले हम जैनोंका एक विशेष उत्तरदायित्व हो गया है। हज़ारों वर्षोंसे—परंपरासे हम अहिंसाधर्मकी घोषणा करते रहें हैं और उसके लिये बहुतसे कष्ट भी सहे हैं। इसलिये आज जब अहिंसाके सिद्धान्तकी परीक्षाका और उसके विकास का समय आया है, तब हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम इसकी प्रतिष्ठामें अपना सहयोग दें और स्पष्ट तौर पर अपना मत दें। हम समझते हैं कि और कुछ न कर सकें तो अहिंसाकी सैद्धान्तिक चर्चामें तो हम अधिकारसे बोल ही सकते हैं। यदि हम आज इस प्रश्नकी चर्चामें संसारके सामने वास्तवमें कुछ स्पष्ट और निश्चित् राय रख सकें तो अहिंसाधर्मके प्रचारमें थोड़ासा हाथ बँटा सकनेके पुण्यके भागी भी हो सकेंगे।

इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर हम नीचे लिखे कुछ प्रश्नों पर आपकी स्पष्ट और निश्चित राय चाहते हैं और आशा करते हैं कि आप हमें जितनी जल्दी हो सके, अपने उत्तरसे कृतार्थ करेंगे। हम यह पत्र सभी जैनसम्प्रदायोंके आचार्य, प्रख्यात् साधु, आगेवान श्रावक तथा जैनपत्रोंके सम्पादकोंके पास भेज रहे हैं और चाहते हैं कि पर्यूषणपर्व तक सब उत्तरोंका संकलन करके प्रकाशित करें। यदि हमारी जानकारी न होनेसे या भूलसे किन्हीं महानुभावके पास यह पत्र खास तौरसे न पहुँचे तो भी यह उनकी नज़रमें आने पर वह अपना मत इस पर प्रकट करेंगे, ऐसी हमें आशा है। प्रश्न इस प्रकार हैं—

१—जैनधर्मके अनुसार अहिंसाकी क्या व्याख्या है? आपकी रायमें क्या आज जो व्याख्या की जाती है, वह उससे भिन्न है? आपकी सम्मतिमें अहिंसा की पूर्ण व्याख्या क्या है?

२—क्या यह सम्भव है कि बाहरके आक्रमण या अन्दरूनी झगड़ों, (जैसे हिन्दु-मुस्लिम दंगे, या लूट मार) से बिना हथियारों या फौजके अहिंसात्मक ढंगसे देशकी रक्षा हो सकती है?

३—यदि ऐसा नहीं तो क्या आपकी रायमें अहिंसा जीवनका सर्वव्यापी सिद्धान्त नहीं हो सकता?

४—अहिंसात्मक ढंगसे देशकी रक्षाका प्रश्न हल हो सकता है, तो किस तरीक़ेसे और क्यों कर?

५—आपकी जानमें क्या जैनशास्त्रों या साहित्यमें ऐसे कोई उदाहरण हैं जब देश या राज्यकी रक्षाके लिये अहिंसात्मक उपाय काममें लाये गये हों।

६—क्या आपकी जानमें शास्त्रोंमें ऐसे भी उदाहरण हैं जब देश या धर्मकी रक्षाका प्रश्न उपस्थित होने पर जैनआचार्योंने हिंसासे रक्षा करनेका आदेश दिया हो या आयोजन किया हो।

हम आशा करते हैं कि जैसा भी हो, संक्षेपमें या विस्तारसे आप अपना उत्तर शीघ्र ही भेजनेकी कृपा करेंगे। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि इस प्रश्नकी चर्चा उठानेमें हमारा एक मात्र उद्देश्य अहिंसाके प्रचार में तथा उनके प्रयोके बीचमें आई हुई बाधाओंको दूर करने में जितना हो सके उतना सहयोग देनेका है।

विनीत

विजयसिंह नाहर
सिद्धराज ढड्ढा
भंवरमल सिंघी

४८, इंडियन मिररस्ट्रीट
कलकत्ता

वीरोंकी अहिंसाका प्रयोग

[श्री महात्मा गांधी]

[यह महात्मा गांधीजीका वह भाषण है, जिसे उन्होंने गत २२ जूनको वर्धामें गांधी-सेवा-संघकी सभामें दिया था। इसमें उन्होंने अपना सारा हृदय उँडेल कर रख दिया है और अपने पचास वर्षके अनुभवको बहुत स्पष्ट शब्दोंमें जनताके सामने रक्खा है। अहिंसा-सम्बंधी प्रश्नावलीका जो पत्र पीछे प्रकाशित हुआ है उसमें इसी पर ख़ास तौरसे ध्यान देनेकी प्रेरणा की गई है। यह पूरा भाषण पहिले 'सर्वोदय' में प्रकाशित हुआ था, अब इसी अगस्त मासके 'तरुण ओसवाल' में भी प्रकट हुआ है। 'तरुण ओसवाल' में जहाँ कहीं छपनेकी कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं, उन्हें 'सर्वोदय' परसे ठीक करके दिया जा रहा है। पाठकोंको यह पूरा भाषण गौरके साथ पढ़ना चाहिये। —सम्पादक]

मेरी साधना

मैंने जाजूजीके पास कुछ प्रश्न दिये। इसका कारण यह है कि मेरे दिलमें भी अनेक तरहके विचार आते रहते हैं। मैंने आज तक अहिंसा या ग्रामोद्योगके जो विचार और कार्य-क्रम जगतके सामने रखे, उसका मतलब यह नहीं था कि मेरे पास कोई बने-बनाये सिद्धान्त पड़े हैं, या मैंने कोई अन्तिम निर्णय कर लिये हैं। परन्तु फिर भी, इस विषयमें मेरे कुछ विचार तो हैं ही। पचास वर्ष तक मैंने एकही चीजकी साधना की है। ज्ञान-पूर्वक विचार भले ही न किया हो, लेकिन फिर भी विचार तो होता ही रहा। उसे आप मेरी अन्तर-आवाज कहें या अनुभवका परिणाम कहें। जो कुछ है, आपके सामने रखता हूँ। पचास साल तक उसी अन्दरकी आवाजको श्रवण करता रहा हूँ।

'अहिंसा' शब्द निषेध

जो अहिंसक है, उसके हाथमें चाहे कोई भी उद्यम क्यों न रहे, उसमें वह अधिक-से-अधिक अहिंसा लानेकी कोशिश करेगा ही। यह तो वस्तु स्थिति है कि बगैर हिंसाके कोई भी उद्योग चल नहीं सकता। एक दृष्टिसे जीवनके लिये हिंसा अनिवार्य मालूम होती है। हम हिंसाको घटाना चाहते हैं, और हो सके तो उसका लोप करना चाहते हैं। मतलब यह कि हम हिंसा करते हैं, परन्तु अहिंसाकी ओर क़दम बढ़ाना चाहते हैं। हिंसाका त्याग करनेकी हमारी कल्पनामें से अहिंसा निकली है। इसलिये हमें शब्द भी निषेधात्मक मिला है। 'अहिंसा शब्द निषेधात्मक है।

'अहिंसा' की मर्यादित व्याख्या

अर्थात् जो अहिंसाको मानता है, वह जो उद्योग करेगा, उसमें कम से कम हिंसा करनेका प्रयत्न करेगा। लेकिन कुछ उद्योग ही ऐसे हैं, जो हिंसा बढ़ाते हैं। जो मनुष्य स्वभावसे ही अहिंसक है, वह ऐसे चन्द उद्योगोंको छोड़ ही देता है। उदाहरणार्थ,यह कल्पना ही नहीं की जा सकती कि वह कसाईका धन्धा करेगा। मेरा मतलब यह नहीं है कि मांसाहारी कभी अहिंसक हो ही नहीं सकता मांसाहार दूसरी चीज़ है। हिंदुस्तानमें थोड़ेसे ब्राह्मण और वैश्योंको छोड़कर बाकीके सब तो मांसाहारी ही हैं। लेकिन फिर भी, वे अहिंसाको परमधर्म मानते हैं। यहाँ हम मांसाहारीकी हिंसा का विचार नहीं कर रहे हैं। जो मनुष्य माँसाहारी हैं, वे सारे हिंसावादी नहीं हैं। मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि मांसाहारी मनुष्य अहिंसक नहीं होता? ऐंड्रूज़से बढ़कर अहिंसक मनुष्य कहाँ मिलेगा? लेकिन वह भी तो पहले माँसाहारी था। बादमें उसने मांसाहार छोड़ दिया। लेकिन जब माँसाहारी था, तब भी अहिंसक तो था ही। छोड़ने पर भी, मैं जानता हूँ, कि कभी २ जब वह अपनी बहनके पास चला जाता था तब माँस खा लेता था, या डाक्टर लोग आग्रह करते थे तो भी खा लेता था। लेकिन उससे उसकी अहिंसा थोड़े ही कम हो जाती थी? इसलिये यहाँ पर हमारी अहिंसाकी व्याख्या परिमित है। हमारी अहिंसा मनुष्यों तक ही मर्यादित है।

हिंसक और अहिंसक उद्योग

लेकिन माँसाहारी अहिंसक भी बाज चीज़ तो छोड़ ही देता है। जैसे वह शिकार कभी नहीं करेगा। यानी जिनमें हिंसाका विस्तार बढ़ता ही जाता है उन प्रवृत्तियोंमें वह कभी नहीं पड़ेगा। वह युद्धमें नहीं पड़ेगा। युद्धमें शस्त्रास्त्र बनानेके कारखानोंमें काम नहीं करेगा। उनके लिये नये नये शस्त्रोंकी खोज नहीं करेगा। मतलब, वह ऐसा कोई उद्योग नहीं करेगा, जो हिंसा पर ही आश्रित है और हिंसाको बढ़ाता है।

अब, काफी उद्योग ऐसे भी हैं, जो जीवनके लिये आवश्यक हैं; लेकिन वे बिना हिंसाके चल ही नहीं सकते। जैसे खेतीका उद्योग है। ऐसे उद्योग अहिंसामें आजाते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि उनमें हिंसाकी गुंजाइश नहीं है, अथवा वे बिना हिंसा के चल सकते हैं। लेकिन उनकी बुनियाद हिंसा नहीं है और वे हिंसाको बढ़ाते भी नहीं हैं। ऐसे उद्योगोंमें होने वाली हिंसा हम घटा सकते हैं और उसे अपरिहार्य हिंसाकी हद तक ले जा सकते हैं। क्यों कि आखिरी अहिंसा हमारे हृदयका धर्म है। हम यह नहीं कह सकते कि किसी उद्योगका अहिंसासे अनिवार्य सम्बन्ध है। वह तो हमारी भावना पर निर्भर है। हमारा हृदय अहिंसा होगा, तो हम अपने उद्योगमें भी अहिंसा लाएँगे।

अहिंसा केवल बाह्य वस्तु नहीं है। मान लीजिये एक मनुष्य है, काफी कमा लेता है और सुखसे रहता है। किसीका कर्ज वगैरह नहीं करता, लेकिन हमेशा दूसरोंकी इमारत और मिलकियत पर दृष्टि रखता है, एक करोड़के दस करोड़ करना चाहता है, तो मैं उसे अहिंसक नहीं कहूँगा। ऐसा कोई धन्धा नहीं, जिसमें हिंसा हो ही नहीं। लेकिन

चन्द धन्धे ऐसे हैं जो हिंसाको ही बढ़ाते हैं। अहिंसक मनुष्यको उन्हें वर्ज्य समझना चाहिये। दूसरे अनेक धंधोंमें अगर हिंसाके लिये स्थान है तो अहिंसाके लिये भी है। हमारे दिलमें अगर अहिंसा भरी हुई है तो हम अहिंसक वृत्तिसे उन धन्धोंको करें। हम उन उद्योगोंका दुरुपयोग करें, यह बात दूसरी है।

प्राचीन भारत की अर्थ-व्यवस्था

मेरे पास कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। परन्तु मेरा ऐसा विश्वास है कि हिन्दुस्तान कभी सुखी रहा है। उस जमानेमें लोग अपने अपने धन्धे परोपकार बुद्धिसे करते थे। उसमें उदर निर्वाह तो ले लेते थे; लेकिन धन्धा समाजके हितका ही होता था। मेरा कुछ ऐसा ख़याल है कि जिन्होंने हिन्दुस्तानके गांवोंका निर्माण किया, उन्होंने समाज का संगठन ही ऐसा किया जिसमें शोषण और हिंसाके लिये कमसे कम स्थान रहे। उन्होंने मनुष्य के अधिकारका विचार नहीं किया; उसके धर्मका विचार किया। वह अपनी परम्परा और योग्यता के अनुसार समाजके हितका उद्योग करता था। उसमेंसे उसे रोटी भी मिल जाती थी, यह दूसरी बात थी। लेकिन उसमें करोड़ोंको चूसनेकी भावना नहीं थी। लाभकी भावनाके बदले धर्मकी भावना थी। वे अपने धर्मका आचरण करते थे; रोटी तो यों ही चल जाती थी। समाजकी सेवा ही मुख्य चीज़ थी। उद्योग करनेका उद्देश्य व्यक्तिगत नफ़ा नहीं था। समाजका संगठन ही ऐसा था। उदाहरणार्थ, गांवमें बढ़ईकी जरूरत होती थी। वह खेती के लिये औज़ार तैयार करता था; लेकिन गांव उसे पैसे नहीं देता था। देहाती समाज पर यह बन्धन लगा दिया था कि उसे अनाज दिया जाय। उसमें भी हिंसा काफी हो सकती थी। लेकिन सुव्यवस्थित समाजमें उसे न्याय मिलता था। और किसी जमानेमें समाज सुव्यवस्थित था ऐसा मैं मानता हूँ। उस वक्त इन उद्योगोंमें हिंसा नहीं थी।

एक उदाहरण

मेरे इस विश्वासके काफी सबूत हैं। अपने छुटपनमें जब मैं काठियावाड़के देहातोंमें जाता था तो लोगोंमें तेज था। उनके शरीर हट्टे-कट्टे थे। आज वे निष्तेज हो गये हैं। घरमें दो बर्तन भी नहीं रहे। इस परसे मुझको ऐसा लगता है कि किसी वक्त हमारा समाज सुव्यवस्थित था। उस वक्त उसका जीवन अहिंसक था। अहिंसक जीवनके लिये आवश्यक सब उद्योग अच्छी तरह चलते थे। अहिंसक जीवनके लिये जितने उद्योग अनिवार्य हैं उनका अहिंसासे सीधा सम्बन्ध है।

शरीर-श्रम

इसीमें शरीर-श्रम आ जाता है। मनुष्य अपने श्रमसे थोड़ी सी ही खेती कर सकता है। लेकिन अगर लाखों बीघे ज़मीनके दो चार ही मालिक हो जाते हैं, तो बाकीके सब मज़दूर हो जाते हैं। यह बग़ैर हिंसाके नहीं हो सकता। अगर आप कहेंगे कि वह मज़दूर नहीं रखेंगे, यंत्रोंसे काम लेंगे; तो भी हिंसा आ ही जाती है। जिसके पास एक लाख बीघा ज़मीन पड़ी है, उसे यह घमण्ड तो आ ही जाता है कि मैं इतनी जमीनका मालिक हूँ। धीरे धीरे उसमें दूसरों पर सत्ता क़ायम करने का लालच आ जाता है। यंत्रों की मदद से

वह दूर दूरके लोगोंको भी गुलाम बना लेता है। और उन्हें इसका पता भी नहीं होता, कि वे गुलाम बन रहे हैं। गुलाम बनानेका ऐसा एक खूबसूरत तरीका इन लोगोंने ढूंढ़ लिया है। जैसे फोर्ड है। एक कारखाना बनाकर बैठ गया है। चन्द आदमी उसके यहाँ काम करते हैं। लोगोंको प्रलोभन दिखाता है, विज्ञापन निकालता है। हिंसक प्रवृत्तिका ऐसा मोहक रास्ता निकाल लिया है कि हम उसमें जाकर फँस जाते हैं और भस्म हो जाते हैं। हमें इन बातोंका विचार करना है कि क्या हम उसमें फँस जाना चाहते हैं या उससे बचे रहना चाहते हैं?

मेरा विशेष दावा

अगर हम अपनी अहिंसाको अविच्छिन्न रखना चाहते हैं और सारे समाजको अहिंसक बनाना चाहते हैं, तो हमें उसका रास्ता खोजना होगा। मेरा तो यह दावा रहा है कि सत्य, अहिंसा, वगैरह जो यम हैं, वे ऋषि मुनियोंके लिये नहीं हैं। पुराने लोग मानते हैं कि मनुने जो यम बतलाये हैं वे ऋषि-मुनियोंके लिये हैं, व्यवहारी मनुष्योंके लिये नहीं हैं। मैंने यह विशेष दावा किया है कि अहिंसा सामाजिक चीज़ है। मनुष्य केवल व्यक्ति नहीं है; वह पिण्ड भी है और ब्रह्माण्ड भी। वह अपने ब्रह्माण्डका बोझ अपने कंधे पर लिये फिरता है। जो धर्म व्यक्तिके साथ खत्म हो जाता है, वह मेरे कामका नहीं है। मेरा यह दावा है कि अहिंसा सामाजिक चीज़ है। केवल व्यक्तिगत चीज़ नहीं है। मनुष्य केवल व्यक्ति नहीं है; वह पिण्ड भी है और ब्रह्माण्ड भी। वह अपने ब्रह्माण्डका बोझ अपने कंधे पर लिये फिरता है जो धर्म व्यक्तिके साथ खतम हो जाता है, वह मेरे कामका नहीं है। मेरा यह दावा है कि सारा समाज अहिंसाका आचरण कर सकता है और आज भी कर रहा है। मैंने इसी विश्वास पर चलनेकी कोशिश की है और मैं मानता हूँ कि मुझे उसमें निष्फलता नहीं मिली।

अहिंसा समाजका प्राण है

मेरे लिये अहिंसा समाजके प्राणके समान चीज़ है। वह सामाजिक धर्म है, व्यक्तिके साथ खतम होनेवाला नहीं है। पशु और मनुष्यमें यही तो भेद है। पशुको ज्ञान नहीं है मनुष्यको है। इस लिए अहिंसा उसकी विशेषता है। वह समाजके लिए भी सुलभ होनी चाहिये। समाज उसीके बल पर टिका है। किसी समाजमें उसका कमविकास हुआ है, किसीमें बेशी विकास हुआ है। लेकिन उसके बिना समाज एक क्षण भी नहीं टिक सकता। मेरे दावेमें कितना सत्य है, इसकी आप शोध करें।

आपका कर्तव्य

मैं जो यह कहा करताहूं कि सत्य और अहिंसा से जो शक्ति पैदा हो जाती है उसकी तुलना किसी दूसरी शक्तिसे नहीं हो सकती, क्या वह सच है? इसकी शोध भी आपको करनी चाहिये। हमें उस शक्तिकी साधना करके वह अपने जीवनमें बितानी चाहिये। तब तो हम उसका प्रत्यक्ष प्रमाण दे सकेंगे। गाँधी-सेवा-संघका यह कर्तव्य है कि वह मेरे दावेका परीक्षण करे। क्या अहिंसा करोड़ों लोगोंके करने जैसी चीज़ है? क्या हिंसा-अहिंसा का मिश्रण ही व्यहारके लिये जरूरी है? क्या

अहिंसा दर-असल सामाजिक धर्म है ? क्या हम उस पर डटे रहें; या उसे छोड़ दें ? इन सारी बातोंका निर्णय आपको करना है। अहिंसाकी शक्ति अपने जीवन द्वाराप्रगट करना हमारा कर्तव्य है।

हमने आज तक अहिंसाका प्रयोग नहीं किया

हम यह कर्तव्य नहीं कर सके, इसका अनुभव कल हुआ। काँग्रेसके महामंडलने (हाइ कमाण्ड ने) कल जो प्रस्ताव किया, उस परसे साफ़ है कि हम परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हुये। वह महामंडलके लिये शर्मकी बात नहीं है। वह तो मेरे लिये शर्म की बात है। मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मेरी बात तीर जैसी सीधी उनके हृदय तक पहुँच सके। कांग्रेसमें भी तो मैं मुख्य कार्य-कर्ता रहा। उनके दिलों पर मैं अपना असर नहीं कर सका। इसमें शर्म तो मेरी है। इससे यह सिद्ध हुआ है कि आज तक जिस अहिंसाका आश्रय लिया, वह सच्ची अहिंसा नहीं थी। वह निःशस्त्रोंकी अहिंसा थी। लेकिन मैं तो कहता हूँ कि अहिंसा बलवानोंका शस्त्र है। हमने आज तक जो कुछ किया, वह अहिंसाके नाम पर दूसरा ही कुछ किया। उसको आप और कुछ भी कह लीजिये; लेकिन अहिंसा नहीं कह सकते। वह क्या था, यह मैं नहीं बता सकता। वह तो आप काका साहब, विनोबा या किशोरलालसे पूछें। वे बतावें कि हमने जो आज तक किया, उसे कौनसा नाम दिया जाय। लेकिन मैं इतना जानता हूँ कि वह अहिंसा नहीं थी। मेरे नज़दीक तो शस्त्रधारी भी बहादुरीमें अहिंसक व्यक्तिकी बराबरी नहीं कर सकता। वह तो शस्त्र का सहारा चाहता है, इसलिये वह अशक्त है। अहिंसा अशक्तोंका शस्त्र नहीं है।

मेरा दोष

तो फिर आप पूछेंगे कि मैंने जनतासे उस शस्त्रका प्रयोग क्यों करवाया ? क्या उस वक्त मैं यह नहीं जानता था ? मैं जानता तो था। लेकिन उस वक्त मेरी दृष्टि इतनी शुद्ध नहीं हुई थी। अगर उस वक्त मेरी दृष्टि शुद्ध होती, तो मैं लोगोंसे कहता कि 'मैं आपसे जो कुछ कह रहा हूँ, उसे आप अहिंसा न कहें। आप अहिंसाके लिये लायक नहीं हैं; डरसे भरे हुये हैं। आपके दिलमें हिंसा भरी हुई है। आप अंग्रेजोंसे डरते हैं। अगर आप हिंदू हैं तो मुसलमानसे डरते हैं; अगर आप मुसलमान हैं तो तगड़े हिन्दुओंसे डरते हैं। इसलिये मैं जो प्रयोग आपसे करा रहा हूँ वह अहिंसाका प्रयोग नहीं है। सारा डरपोकोंका समाज है। उनमें से एक डरपोक आदमी मैं भी हूँ।" यह सब मुझे साफ़ २ कह देना चाहिये था। मुझे यह कह देना चाहिये था कि 'हम प्रतिकारकी जिस नीतिका प्रयोग कर रहे हैं वह सच्ची अहिंसा नहीं है।' मैंने ग़लत भाषाका प्रयोग किया। अगर मैं ऐसा न करता, तो यह करुण कथा, जो कल हुई, असम्भव थी। इसलिये मैं अपने आपको दोषी पाता हूँ।

हमारा हेतु शुद्ध था

वह करुण कथा तो है, लेकिन फिर भी मुझे उस का दुःख नहीं है। हमने ग़लत प्रयोग भले ही किया हो, लेकिन शुद्ध हृदयसे किया। जो अहिंसा नहीं थी उसे अहिंसा मानकर अपना काम किया।

हमारा काम तो निपट गया लेकिन उसमेंसे एक अनुभव मिला। आज तक हमने जो किया, वह डरके मारे किया। इसलिये सफलता नहीं मिली। परन्तु हमारा हेतु शुद्ध था। इसलिमे अब भगवान ने हमें बचा लिया। गलत नीतिको सही समझ कर हमने अधिकार-ग्रहण भी किया। वहां भी अहिंसा की परीक्षामें उतीर्ण नहीं हुये। तभीसे मुझे तो विश्वास हो गया था कि हमें अधिकार-पदोंका त्याग करना ही होगा। भगवानने हमारी लाज रख ली। कभी न-कभी हमें अधिकार-त्याग तो करना ही था। भगवानने हमें निमित्त दे दिया। किसीने हमको वहांसे निकाला नहीं। हममेंसे बहुतेरोंके दिलोंमें अधिकारका मोह हो गया था। कुछ लोगोंको थोड़ासा पैसा भी मिल जाता था। लेकिन काँग्रेसका हुक्म होते ही सब छोड़कर अलग हो गये। साँप जैसे अपनी केंचली फेंक देता है उसी तरह फेंककर अलग होगये। मान लिया कि ये अधिकार-पद निकम्मे हैं, क्योंकि हमारे वहाँ बैठे रहने पर भी सरकारने हमें लड़ाईमें शरीक कर दिया, और हमें उसका पता भी नहीं चला। भगवान्ने ही लाज रखी, क्योंकि हम वहाँ रहते तो हमारी दुर्बलताका प्रदर्शन हो जाता।

शुद्ध अहिंसक प्रयोगका मौका

आज यह दूसरा मौका आया। यूरोपमें महा युद्ध शुरू हो गया। जगतको बलवान अहिंसाका प्रयोग दिखानेका मौका आया। यह हमारी परीक्षा का समय है। हम उसमें उत्तीर्ण नहीं हुए। आज देशको बाह्य आक्रमणसे डर नहीं है। मेरा खयाल है कि बाह्य आक्रमण नहीं होगा। लेकिन सल्तनत कमजोर हो जाने पर गुण्डोंको मौका मिलेगा। चोर हैं, डाकू हैं, वे हमारे घरों पर हमला करेंगे। हमारी लड़कियों पर आक्रमण करेंगे। अगर हमारी अहिंसा बलवान की है, तो हम उन पर क्रोध नहीं करेंगे। वे हमें पत्थर मारेंगे, गालियाँ देंगे, तो भी हमें उनके प्रति दया रखनी चाहिये। हम तो यही कहें कि ये पागलपनमें ऐसा कर रहे हैं। हमें उनके प्रति द्वेष न रखते हुए उन पर दया करनी चाहिये और मर जाना चाहिए। जब तक हम ज़िन्दा हैं, वे एक भी लड़कीको हाथ न लगा सकें। इसी प्रयत्नमें हमें मरना है।

वर्किङ्ग कमेटीकी स्थिति

इस प्रकार चोर, डाकू और आततायी हमला करें तो लोग अपना रक्षण किस प्रकार करें, यह प्रश्न आया। काँग्रेसके महाजनों (हाई कमाण्ड) ने देखा कि शान्ति-सेना तो बन नहीं सकती। फिर कांग्रेस लोगोंको क्या आदेश दे? क्या कांग्रेस मिट जाय? इसलिए उन्होंने वह कल वाला प्रस्ताव किया। उन्होंने समझा कि सम्पूर्ण अहिंसा का प्रयोग देशकी शक्तिके बाहर है। देशको फौज की जरूरत है।

मेरे पास भी हमेशा पत्र आते हैं कि 'अन्धाधुंध होने वाली है। तुम राष्ट्रीय सेना बनाओ, और उसके लिये लोगोंको भर्ती करो'। लेकिन मैं यह नहीं कर सकता।

मेरी स्थिति

मैंने तो अहिंसाकी ही साधना की है। मैं डरपोक या और कुछ भले ही होऊँ; लेकिन दूसरी साधना नहीं कर सकता। पचास वर्ष तक मैंने

अहिंसाकी ही उपासनाकी है। काँग्रेसके द्वारा भी मैं वही बात सिद्ध करना चाहता था। मैं चवन्नी का सदस्य भी नहीं था, लेकिन मैं कहता था कि चवन्नी सदस्यसे ज्यादा हूँ। क्योंकि काँग्रेसके कार्य क्रमका नेतृत्व मैं करता था। मेरी नैतिक जिम्मेदारी चवन्नी-सदस्यसे बहुत अधिक थी। अब वह नैतिक बंधन भी कलसे छोड़ कर आया हूं। क्योंकि अब मैं अपना प्रयोग किसके द्वारा करूँ? आज तक तो काँग्रेसके द्वारा करता रहा।

कार्य-समिति और मैं

आज तक काँग्रेसने मेरा साथ दिया। लेकिन जब वर्तमान महायुद्ध शुरू हुआ और मैं शिमलासे लौटा, तभीसे बात कुछ दूसरी हो गई। शिमलामें मैंने वाइसरायसे कहा था कि 'मेरी सहानुभूति तुम्हारे लिये है। लेकिन हम तो अहिंसक हैं। हम केवल आशीर्वाद दे सकते हैं। अगर हमारी अहिंसा बलवानोंकी अहिंसा है, तो हमारे नैतिक आशीर्वाद से संसारमें आपका बल बढ़ेगा।' परन्तु मैंने देखा कि मेरे विचारोंसे काँग्रेसके महाजन सहमत नहीं हो सकते थे। उन्होंने अपना अलग प्रकारका वक्तव्य निकाला। अगर वे मेरी नीति स्वीकारते, तो काँग्रेसका इतिहास दूसरी ही तरह लिखा जाता।

यदि मैं बलपूर्वक कहता कि मेरी ही नीति माननी चाहिये, तो राजेन्द्र बाबू, राजाजी और दूसरे सदस्य मान लेते। वे भी कह देते कि 'ठीक है, तुम्हारे साथ चलेंगे।' लेकिन वह धोखाबाजी हो जाती। उसमें अहिंसा नामको भी नहीं रहती। अहिंसाका पहला लक्षण सचाई और ईमानदारी है। मैंने अभी कहा कि अहिंसा बलवानका शस्त्र है। बलवानका क्या, वह तो बलिष्ठका शस्त्र है। क्षमा तो वीरपुरुषका भूषण है; दुर्बलोंका नहीं। जबरदस्ती कोई चीज मान लेना दुर्बलता है। इसलिये मेरे कहनेसे वे मेरी बात मान लेते, तो वह दगाबाजी हो जाती। जो चीज मैं मानता हूँ वह अगर उनकी बुद्धिको मंजूर नहीं है, तो जो सच है वही उन्हें करना चाहिये। इस दृष्टिसे उन्होंने जो किया, वह ठीक ही किया है।

अब हम सहधर्मी नहीं रहे

परन्तु मेरी अहिंसक जबान अब उनकी बात का उच्चार नहीं कर सकती। अब तक तो वे सरकार से कहते थे कि "आप हमारी बात नहीं मानते, तो हम भी नैतिक दृष्टिसे आपकी सहायता नहीं कर सकते। आप अपने धर्मका जब तक पालन नहीं करते, तब तक हम आपके साथ सहयोग नहीं कर सकते।" मेरी अहिंसक जबान काँग्रेसकी तरफसे यह सब कह सकती थी। उसमें मेरी अहिंसाके प्रयोगके लिये सामान मौजूद था। आज वह नहीं है। अब तो काँग्रेसके महाजन और मैं सहधर्मी नहीं रहे। सक्करके लोगोंने मुझसे पूछा; उनसे भी मैंने कहा कि तुम मेरा रास्ता लो। उन्होंने समझा कि वे मेरी सलाह पर नहीं चल सकते। उन्होंने मारपीटका रास्ता उचित समझा। अब वे मेरे सहधर्मी नहीं रहे वही बात कलके प्रस्तावमें स्पष्ट हुई है। सक्करमें भी कांग्रेस वाले हैं। उनको और कांग्रेसके महामंडलको मैं अपनी नीति पर नहीं ला सका। इसलिये अलग हो गया। ऐसी यह करुण कथा है। कांग्रेसके महामंडलने मुझसे कह

दिया कि "हम अपनी मर्यादासे बाहर नहीं जा सकते। तुम्हें स्वतन्त्र कर देते हैं। तुम बलवानकी अहिंसाका प्रयोग करनेके लिये स्वतन्त्र हो।"

हमारी दुर्बल अहिंसक नीति

आज तक हमने जो अहिंसाकी साधनाकी, उसमें यह बात रही कि हम अहिंसाके द्वारा अंग्रेजों से सत्ता छीन लेंगे। हम उनका हृदय-परिवर्तन नहीं करना चाहते थे। हमारे दिलमें करुणा नहीं थी; क्रोध और द्वेष था। गालियां तो हममें भरी थीं। हम यह नहीं मानते थे कि उनका हृदय बिगड़ा है, वे हमारी दयाके पात्र हैं। हम तो यही मानते थे कि चोर और लुटेरे हैं। इनको अगर हम मार सकते तो अच्छा होता। इसी वृत्तिसे हमने असहयोग और सविनय-भंग किया। जेलमें जा कर बैठे; वहां नखरे किये।

'अहिंसा'के नामका प्रभाव

परन्तु इसमेंसे भी कुछ अच्छा परिणाम निकल आया। अहिंसा हमारी ज़बान पर थी। उसका कुछ शुभ परिणाम हुआ। थोड़ी-बहुत सफलता मिल गयी। राम नामके विषयमें हमने सुना है कि राम नामसे हम तर जाते हैं, तो फिर स्वयं राम ही आजावे तो क्या होगा? अहिंसाके नाम ने भी इतना किया; तो फिर अगर दर असल हममें सच्ची अहिंसा आ जावे, तो हम आकाशमें उड़ने लगेंगे। जो शक्ति हिटलरके हवाई जहाजोंमें नहीं है, वह उड़नेकी शक्ति हममें होगी। हमारा शब्द आकाश गंगाको भी भेदता हुआ चला जायगा। यह ज़मीन आसमान हो जायगी।

गांधी सेवा संघ क्या करे?

आज तक गांधी सेवा संघने जो काम किया वह निकम्मा काम था; लेकिन सच्चे दिलसे किया था। इसलिये बिल्कुल निष्फल नहीं हुआ। हम गलती कर रहे थे, लेकिन उसके पीछे धोखेबाजी नहीं थी। फिर भी जो कुछ किया, वह हमारा भूषण नहीं कहा जा सकता। आज परीक्षाका मौका आ गया। काँग्रेसके महाजन तो उत्तीर्ण नहीं हुए। अब देखना है, गाँधी सेवा संघ क्या कर सकता है? गांधी सेवा संघके लोग अगर जनतामें अहिंसाकी जागृति कर सकेंगे, तो काँग्रेस के महाजनोंको भी खशी होगी। काँग्रेसके लोग अगर महाजनोंसे कहेंगे कि आप क्यों कहते हैं कि अहिंसाका पालन नहीं हो सकता; हम तो अहिंसक हैं और रहेंगे, तो कांग्रेसके महाजन नाचेंगे। आप लोग गाँधी सेवा-संघ मानने वाले हैं। आपमेंसे कुछ काँग्रेसमें हैं, कुछ नहीं हैं। मैं तो वहां नहीं रहा। अब जिन लोगोंके नाम कांग्रेसके दफ्तरमें दर्ज हैं, वे अगर अहिंसक हैं तो उन्हें कार्य-समिति से कहना चाहिये कि हम अहिंसामें ही मानते हैं। लेकिन यों ही कह देनेसे काम नहीं चलेगा। आपके दिलोंमें सच्ची अहिंसा होनी चाहिये। इस तरह की अहिंसा अगर कांग्रेस सदस्योंमें है, तो आल इन्डिया काँग्रेस कमेटीमें वे कहेंगे, काँग्रेसका अधिवेशन होगा, उसमें भी कहेंगे कि हम तो अहिंसक हैं। जब तक आप समझते हैं कि आप का अहिंसाका टट्टू कांग्रेसमें चल सकता है, तब तक वहाँ रहें, नहीं तो निकल जायँ। कांग्रेसका धर्म एक रहे और आपका दूसरा, इससे कार्य नहीं

हो सकता। तब तो हमको ऐलान कर देना चाहिये कि हम लोगोंके प्रतिनिधि नहीं बन सकते।

दिली अहिंसा

अगर आप कांग्रेसमें रहकर अहिंसाका प्रचार करना चाहते हैं, तो आपको खबरदार रहना होगा। आपकी अहिंसा सच्ची अहिंसा होनी चाहिये। अगर मैं दिलसे भी किसी आदमीको मारना चाहता हूँ तो मेरी अहिंसा खतम है। मैं शरीरसे नहीं मारता, इसका मतलब यही है कि मैं दुर्बल हूँ। किसी आदमीको लकवा हो जाय तो वह मार नहीं सकता। उसी तरहकी मेरी अहिंसा हो जाती है। अगर आप दिलसे भी अहिंसक हैं तो कांग्रेसके महाजनोंसे कह सकते हैं कि हम तो शुद्ध अहिंसाके प्रयोगके लिए तैयार हैं।

भावुक न बनें

उस हालात में आपको अपना परीक्षण करना होगा, फ़जरसे शाम तक आप जो जो कार्य करेंगे, उसके द्वारा शुद्ध अहिंसाकी साधना करनी होगी। केवल दिखावेके लिए नहीं, केवल भावुकतासे नहीं। हम केवल भावुक बनेंगे तो वहममें फँसेंगे। भावुकताके सिलसिलेमें मुझे एक किस्सा याद आता है। मेरे पिताजीके पास एक सज्जन आया करते थे। बड़े भावुक थे, वहमी थे। जहाँ किसीने छींक दिया कि बैठ गये उनके घरसे आने के लिए पाँच मिनट लगते थे। लेकिन इन भाई को पचास मिनट लग जाते थे। छींकोंके कारण बेचारे रुक जाते थे। इसी तरह हम भावुकतासे अहिंसाके नाम पर सभी कामोंसे हट सकते हैं। मैं ऐसा नहीं चाहता। हम सब ऐसे भावुक न बनें।

स्वभावसिद्ध कार्य ही स्वधर्म है

जो कुछ हम करें, वह धर्मकी भावनासे करें। केवल भावुकतासे नहीं। मैं आज यहाँ बोलने आ गया हूँ। अपना धर्म समझ कर आया हूँ। मौन तो मेरा स्वभाव हो गया है। मौन मुझको मीठा लगता है। वह मेरा विनोद हो गया है। मनुष्यका कर्तव्य भी जब स्वभाव-सिद्ध हो जाता है, तो वही उसका विनोद हो जाता है। फिर कर्तव्य क्या रहा? वह तो उसका स्वभाव हो गया; आनन्द हो गया। अब तो मेरे लिए मौन स्वभाव-सिद्ध हो गया है। इसी तरह अहिंसा हमारे लिए स्वभाव-सिद्ध हो जाना चाहिये। कर्तव्य जब स्वभाव-सिद्ध हो जाता है, तब वह हमारा स्वधर्म हो जाता है।

उसी तरह आप दिन भर जो करेंगे, उसके साथ अहिंसाका तार चलता ही रहेगा। चाहे झूठे तर्क शास्त्रके आधार पर क्यों न हो, आपके लिये अहिंसा ही परम धर्म होगा। झूठे तर्क शास्त्रको ही माया कहते हैं। दूसरोंके लिए वह माया है लेकिन हम जब तक उसमें फँसे हैं, तब तक हमारे लिए वह माया नहीं है। हमारे लिए वह सत्य ही है। मैं जानता हूँ कि इस चरखे पर ज्यों ज्यों एक तार कातता हूँ त्यों त्यों मैं स्वराज्यके नजदीक जाता हूँ। यह माया हो सकती है; लेकिन वह मुझे पागलपनसे बचाती है। आपको इस तरह अनुसंधान करना चाहिये।

अहिंसक उपकरणके यज्ञ

यह चरखा मेरे लिए अहिंसाकी साधनाका औजार है। वह जड़ वस्तु है। लेकिन उसके साथ

जब अपनी चेतन वस्तुको मिला देता हूँ; तो उसमेंसे जो मधुर आवाज निकलती है वह अहिंसक होती है। उसमें जो लोहा लगा है; उससे खून भी हो सकता है। लेकिन मैंने इस चरखेमें मनुष्यके हितके लिए उसे लगाया है। मैं उसके सारे अंग स्वच्छ रखता हूँ। उसमेंसे अगर मधुर आवाज न निकले, तो वह हिंसक चीज बन जाती है। हमें तो अहिंसाका यज्ञ करना है। यज्ञकी सामग्री बिल्कुल शुद्ध होनी चाहिये। खराब लकड़ी; खराब लोहा लगावेंगे तो रद्दी चरखा बनेगा। उसकी आवाज कर्णकटु होगी। यज्ञकी सामग्री ऐसी नहीं होती।

इस प्रकारके अनुसंधानसे अगर हम अपनी प्रत्येक क्रिया करेंगे, तो हमारी अहिंसाकी साधना शुद्ध होगी। शुद्ध साधनाके लिए शुद्ध उपकरण भी चाहिये। चरखेको मैंने शुद्ध उपकरण माना है। जो मनःपूर्वक यज्ञ करता है, उसे यज्ञकी सामग्री ही प्रिय लगती है। इसलिए मुझे चरखा प्रिय है। उसकी आवाज मीठी लगती है। मेरे लिये वह अहिंसाका संगीत है।

आप मुझसे आगे बढ़ें

हमको पता नहीं कि इस तरहकी साधनाके लिये किसे कितने वर्ष लगेंगे। किसीको हजार वर्ष लग जायं तो कोई एक ही वर्षमें कर लेगा। मुझे यह अभिमान और मोह नहीं है कि मैंने पचास वर्ष तक साधना करली, इसलिये मैं जल्दी पूर्ण हूंगा और आप अभी शुरू कर रहे हैं, इसलिये आपको अधिक वक्त लगेगा। यह अभिमान मिथ्या है। मैं तो अपूर्ण हूँ डरपोक हूँ। इसलिये मुझे इतने साल लग गये; और तो भी मैं पूर्ण नहीं हुआ। लेकिन यह हो सकता है कि कोई आदमी आज ही शुरू करे और जल्दी ही पूर्ण हो जाय। इसलिये मैंने पृथ्वीसिंहसे कह दिया कि तुममें हिंसक वीरता तो थी। मुझमें तो यह भी नहीं थी। अगर तुम सच्चे दिलसे अहिंसाको अपनाओगे, तो बहुत जल्दी सफल होगे; मुझसे भी आगे चले जाओगे।

मैं सफल शिक्षक बनना चाहता हूं

मेरी अपेक्षा दूसरे लोग मेरे प्रयोगमें अधिक सफल हों तो मैं नाचूंगा। वे अगर मुझे हरा दें तो मैं अपने आपको सच्चा शिक्षक समझूंगा। इसी तरह मैं अपनी सफलता मानता आया हूँ। मैंने लोगोंको जूते बनाना सिखाया है, अब वे मुझसे आगे बढ़ गये हैं। यह प्रभुदास तो खड़ा है। इसे जूते बनाना मैंने सिखलाया। इसकी इतनीसी उम्र थी। यह मुझसे आगे बढ़ गया। दूसरा सैम था। वह कारीगर था। उसने तो वह कला हस्तामलकवत कर ली। वे सब मुझसे आगे बढ़ गये। क्योंकि मेरे दिलमें चोरी नहीं थी। मैं जो कुछ जानता था सब उन्हें देनेको अधीर था। उन्होंने मुझे हरा दिया, यह मुझे अच्छा लगता है। क्योंकि उसका यही मतलब है कि मैं सही शिक्षक हूँ। अगर अहिंसाका भी मैं सही शिक्षक हूँ तो जो लोग मुझसे अहिंसा सीखते हैं, वे मुझसे आगे बढ़ जायेंगे। मुझमें जो कुछ धरा है, वह सब मैं दे देना चाहता हूँ। जो लोग आश्रममें मेरे साथ रहे हैं औ दूसरे भी जो आज मेरे साथ रहते हैं, वे अगर मुझसे आगे नहीं बढ़ते तो इसका यह अर्थ होता है कि मैं सफल शिक्षक नहीं हूँ।

आप मेरे सह-साधक हैं

मेरी यह इच्छा है कि आप लोग अहिंसाकी साधनामें मुझसे भी आगे बढ़ जायँ। क्योंकि मैं सिद्ध नहीं हूँ, आप मेरे सह-साधक हैं। मेरे पास अहिंसाका जो धन है, उसे मैं घर२ बाँट देना चाहता हूँ। उसमें कसर नहीं करना चाहता। आपको अपने दिलमें सोचना चाहिये कि "यह जो कुछ हमें दे रहा है, उसका हम सारी भूमिमें सिंचन करें। यह तो बूढ़ा हो गया है; हम तो तरुण हैं। हम इसके दिये हुए धनको बढ़ावेंगे!" इस तरह सोच कर आप मुझसे आगे बढ़ जायँगे तो मैं आपको आशीर्वाद दूँगा।

मैं अकेला नहीं हूँ

मैं जानना चाहता हूँ कि आपमेंसे कितने मेरे साथ इस रास्ते चलनेको तैयार हैं? अगर कोई न आया तो मुझे अकेला भी चलना ही है। मैं सत्तर सालका हो गया हूँ, तो भी बूढ़ा हो गया हूँ ऐसा तो नहीं समझता। और मैं कभी अकेला तो हो नहीं सकता। और कोई नहीं तो, भगवान मेरे साथ रहेंगे। मुझे अकेलेपनका अनुभव कभी होता ही नहीं।

आपकी अगर अहिंसाके मार्गमें श्रद्धा है, तो आप अपना परीक्षण करें। कितने आदमी इस रास्ते चलनेको तैयार हैं, इसकी खोज करें। कांग्रेस वालोंको टटोलें। यह सब खोज मैं नहीं कर सकता। क्या आप काँग्रेसके महाजनोंको अहिंसाकी शक्ति दे सकते हैं? वे क्या करते; वे तो लाचार थे। जब वे देखते हैं कि लोगोंमें अहिंसाकी एक बून्द भी नहीं है, तो वे कह देते हैं, 'हम क्या करें; हम आपका रास्ता नहीं ले सकते'। मैंने जिस तरह पदाधिकार छोड़ दिया, उस तरह वे तो नहीं छोड़ सकते। मैं अहिंसाको अपनी व्यक्तिगत साधना भी समझता हूँ। वे तो नहीं समझते।

मैंने काँग्रेस क्यों छोड़ी?

इस परसे आप समझायेंगे कि मैंने काँग्रेस छः साल पहले छोड़ दी, यह ठीक ही किया। उसकी अधिक सेवाकी। उसी वक्त मैंने देख लिया कि कांग्रेसमें कई लोग ऐसे आ गये हैं, जो अहिंसाको नहीं मानते; जिनको अहिंसाने स्पर्श भी नहीं किया है। मैं उनसे काम कैसे ले सकता था? साथ साथ मैंने यह भी देखा कि कई अहिंसाके पुजारी काँग्रेसके बाहर पड़े हैं। इसीलिये मैंने अलग हो जाना ही ठीक समझा। आज आप देखते हैं कि मैंने सही काम किया।

क्योंकि मैंने देख लिया कि मैं दूसरी तरहकी कोई सेवा नहीं कर सकता। सिवाय अहिंसाके मुझमें दूसरी कोई शक्ति नहीं है। तब मैं वहाँ रह कर क्या करता? मुझमें जो कुछ शक्ति है वह अहिंसाकी ही शक्ति है। मैं अपनी अपूर्णता जानता हूँ। मेरी अपूर्णता मुझसे अधिक कोई नहीं जानता। लेकिन फिर भी मनुष्य अभिमानी होता है। इसलिये मैं जिन अपूर्णताओंको नहीं देखता, उन्हें आप देख लेते हैं; और मैं आत्म-परीक्षण करता रहता हूँ, इसलिये मेरी जिन अपूर्णताओंको आप नहीं देख सकते; उन्हें मैं देख लेता हूँ। इस तरह दोनोंका जोड़कर लेता हूँ।

अहिंसा ही मेरा बल है

मुझमें अहिंसाकी अपूर्ण शक्ति है, यह मैं जानता हूँ; लेकिन जो कुछ शक्ति है वह अहिंसाकी ही है। लाखों लोग मेरे पास आते हैं। प्रेमसे मुझे अपनाते हैं। औरतें निर्भय होकर मेरे पास रह सकती हैं। मेरे पास ऐसी कौनसी चीज़ है? केवल अहिंसाकी शक्ति है; और कुछ नहीं। अहिंसाकी यह शक्ति एक नयी नीतिके रूपमें मैं जगतको देना चाहता हूँ। उसको सिद्ध करनेके लिये हम क्या कर रहे हैं इसका हिसाब हमें अभी दुनियाको देना बाकी है। दुनियामें आज जो शक्ति प्रकट हो रही है, उसके सामने मैं हारूँगा नहीं। लेकिन हमें सचाई और सावधानीसे काम लेना होगा; नहीं तो हम हार जायेंगे।

हिटलरकी शक्तिका रहस्य

हम अपनी सारी शक्ति अहिंसाकी साधनामें नहीं लगायेंगे, तो हम जीत नहीं सकते। हिटलरको देखिये। जिस चीज़को वह मानता है, उसमें अपने सारे जीवनकी शक्ति लगा देता है। पूरे दिल और पूरी श्रद्धासे उसीमें लगा रहता है। इसलिये मैं हिटलरको महापुरुष मानता हूँ। उसके लिये मेरे मनमें काफी क़द्र है। वह शक्तिमान पुरुष है। आज राक्षस होगया है। जो जीमें आता है, सो करता है; निरंकुश है। लेकिन हमें उसके गुणोंको देखना चाहिये। उसकी शक्तिके रहस्यको पकड़ना चाहिये। तुलसीदासजीने यह बात हमें सिखाई है। उन्होंने रावणकी भी स्तुतिकी है। मेरे दिलमें रावणके लिये भी आदर है। अगर रावण महापुरुष न होता, तो रामचन्द्रजीका शत्रु नहीं हो सकता था। रामचन्द्र असाधारण थे; रावण भी उनका असाधारण शत्रु था।

हिटलरकी एकाग्रता

मेरे नजदीक तो वह सारी काल्पनिक कथा है। लेकिन उसमें सच्चा शिक्षण भरा पड़ा है। हिटलर अपनी साधनामें निरन्तर जाग्रत है। उसके जीवनमें दूसरी चीज़के लिये स्थान ही नहीं रहा है। करीब करीब चौबीस घंटे जागता है। उसका एक क्षण भी दूसरे काममें नहीं जाता। उसने ऐसे ऐसे शोध किये कि उन्हें देखकर ये लोग दिमूढ़ रह जाते हैं। उसके टैंक आकाशमें चलते हैं और पानीमें भी चलते हैं। देखकर ये लोग दंग रह जाते हैं। उसने ऐसी बातें कर दिखाई जो इनके ख्वाबमें भी नहीं थी। वह कितनी साधना कर सकता है, चौबीस घंटे परिश्रम करने पर भी अपनी बुद्धि तीव्र रख सकता है। मैं पूछता हूँ, हमारी बुद्धि कहाँ है? हम जड़वत् क्यों हैं, कोई हमसे सवाल पूछता है तो हमारी बुद्धि कुंठित क्यों होजाती है?

हमारी बुद्धिमें तेजी हो

मैं यह नहीं कहता कि हम वाद-विवाद करें। केवल वाद-विवादमें तो हम हारेंगे ही। हमें तो श्रद्धायुक्त बुद्धिकी शक्ति बतानी है। इसीका नाम शक्ति है। अहिंसाका अर्थ केवल चरखा चलाना नहीं है। उसमें भक्ति होनी चाहिये। अगर भक्तिके बाद हमारी बुद्धि तेजस्वी नहीं हुई, तो मान लेना चाहिये कि हमारी भक्तिमें त्रुटि है। हिटलरकी विद्याके लिये अगर बुद्धिका उपयोग है, तो हमारी विद्याके लिये बुद्धिका उससे कई गुना उपयोग है। हम यह न समझें कि अहिंसाके विकासमें बुद्धिका उपयोग ही नहीं है।

बुद्धिके उपयोग का क्षेत्र

आपकी बुद्धिके उपयोगका क्षेत्र बतानेके लिए मैंने ये प्रश्न बनाए। ये मौलिक प्रश्न हैं। उनका उत्तर आप एक दिनमें नहीं दे सकते। मैं यहाँ तक नहीं पहुँचा कि उन पर पुस्तक लिखूं फिर भी, मेरे दिमागमें कुछ उत्तर तो हैं। मैं पुस्तक लेखक नहीं बन सकता। पुस्तक लेखक तो दूसरोंको बनना है। मेरे पास इतनी फुरसत कहाँ है? जो लोग अध्ययन और खोज करेंगे वे पुस्तक लिखेंगे। पुस्तक लिखना भी कम महत्वका काम नहीं है। जैसे रिचर्ड ग्रेग हैं। वे मेरे पाससे सिद्धान्त ले गये। अध्ययन और खोज करके पुस्तकें लिखते हैं। मैं जो कहनेको डरता था वह आज वह ग्रेग कह रहा है। मैं तो कहता था कि चरखा हिन्दुस्तानके लिए है। वह तो कहता है कि सारी दुनियाका कल्याण चरखेमें और ग्राम उद्योगोंमें भरा है। योरुप और अमेरिकाके लिए भी अहिंसाकी साधनाका दूसरा रास्ता नहीं है।' ग्रेग कहता कि दूसरी तरहसे अहिंसक जीवन असंम्भव है। मैं कहनेसे हिचकता था। लेकिन वह तो बहादुर आदमी है। उसने निर्भय होकर कह डाला। मैंने इस तरह खोजबीन और अध्ययन नहीं किया है। अन्तर्नादने जो मुझे आदेश दिया और प्रत्यक्ष अनुभवसे जो मैंने देखा, वह जगतके सामने रखता गया। ग्रेगके समान लेखबद्ध करके शास्त्र नहीं बनाया। उसकी बुद्धिने जो काम किया, क्या आपकी बुद्धि भी वह कर सकती है?

विपक्षी जो कहते हैं, उसका अनादर नहीं करना चाहिये। उनकी दृष्टिसे उन प्रश्नोंका विचार करके उन्हें उनकी भाषामें समझाना हमारा काम है। मैं यह नहीं कहता कि हम अपना कार्य छोड़ दें। उसे तो आग्रह पूर्वक चलाना ही है लेकिन हम जागृत होकर काम करेंगे, तभी सिद्धि मिलेगी। हमारी बुद्धि मन्द होगी तो हमारा काम बिगड़ने वाला है।

मेरा दर्द

इस दृष्टिसे कल जो प्रस्ताव हुआ, वह आपको अध्ययन और खोजका मौका देगा। उस प्रस्ताव से हमारी आबोहवा दुरुस्त होनी चाहिये। हमें इस बातकी खोज करनी चाहिये कि काँग्रेसके महामण्डलको यह प्रस्ताव क्यों करना पड़ा? जो यह कहेगा कि महामण्डलके लोग डरपोक हैं, वह देश-द्रोह करेगा। उन्होंने जो आबोहवा देखी उसका वह प्रस्ताव प्रतिघोष है। मैं उस आबोहवाका प्रतिघोष नहीं हो सकता; क्योंकि अहिंसा मेरी व्यक्तिगत साधना भी है। काँग्रेसकी वह साधना नहीं है। मुझे तो उसीमें मरना है। काँग्रेसके प्रतिनिधि मेरे जैसा नहीं कर सकते। उनकी साधना अलग है। इसलिये अब न वे मेरे साथ चल सकते हैं, और न मैं उनके साथ चल सकता हूँ। उनके लिये मेरे दिलमें धन्यवाद है। इस बातका दुख भी है कि इतने दूर तक साथ चलने पर भी मैं उन पर अपना असर क्यों नहीं डाल सका? उन्होंने मुझे अपना मार्ग-दर्शक माना था। बड़ी श्रद्धासे बाग डोर मेरे हाथमें दी थी। फिर भी, मैं उनके दिलमें विश्वास नहीं पैदा कर सका। इसका मुझे दर्द है।

रचनात्मक कार्यक्रमका महत्व

आप इस विषयकी शोध करें। हमें तो

अहिंसाकी साधना वीरके शस्त्र के रूपमें करनी है। बात बहुत बड़ी है। हम यह न समझें कि हमें जेल जानेकी शक्ति बढ़ानी है। हमें तो यह बताना है कि रचनात्मक कार्यक्रम स्वराज्यका अविभाज्य अंग है। हमने यह नहीं समझा कि चरखा हमें स्वराज्य देगा। 'गाँधी कहता है इसलिए चरखा चला लो, उससे गरीबको थोड़ा सा धन मिलता है'—यही हमारी वृत्ति रही। अब आपमें यह सिद्ध करनेकी शक्ति आनी चाहिये कि रचनात्मक कार्य ही स्वराज्य दे सकता है। इसका मतलब यह नही है कि आप रोज़ थोड़ासा, कात लें, दो चार मुसलमानोंके साथ दोस्ती करलें, अछूतोंसे मिलने जुलने लगें और समझें कि अब हम स्वराज्यकी लड़ाईके लायक बन गये। आपको तो यही मानना चाहिये कि रचनात्मक कार्य-क्रममें ही स्वराज्य देने की शक्ति है। रचनात्मक कार्यक्रमके बाद लड़ाई करनी है। ऐसी मान्यता आपकी नहीं हो सकती। उस कार्य-क्रममें ही स्वराज्यकी ताक़त है।

मैंने उल्टा प्रयोग कराया

मैंने अहिंसाका प्रयोग इस देशमें उलटा किया। दरअसल तो यह चाहिये था कि रचनात्मक कार्य-क्रमसे शुरू करता। लेकिन मैंने पहले सविनय भंग और असहयोगका, जेल जानेका कार्यक्रम रक्खा। मैंने लोगोंको यह नहीं समझाया कि ये तो बादमें आने वाली चीज़ है। इसलिये वे आन्दोलन कामयाब न हो सके।

क़ानून-भंगका अधिकार

मुझे नडियादका क़िस्सा याद आता है। रौलेट एक्ट सत्याग्रहके वक्तकी बात है। वहीं मैंने कबूल कर लिया था कि मेरी हिमालय जैसी भूल हुई। जिन्होंने ज्ञानपूर्वक कानूनका पालन किया ही नहीं था, उन्हें कानून-भंग बतलाया। उनसे मुझे कहना चाहिये था कि आज तक सरकारके दण्डके भयसे जो किया, वह पहले अपनी इच्छासे करो। तब तुम्हें कानून-भंगका अधिकार प्राप्त होगा।

ईश्वरने मुझे ही क्यों चुना ?

वह सारी अधूरी अहिंसा थी। मेरा उसमें डरपोकपन था। मैं अपने साथियोंको नाराज़ नहीं करना चाहता था। साथियोंके डरसे कुछ करनेसे हिचकना हिंसा है। उसमें असत्य भरा है। मोती लालजी, बल्लभभाई और दूसरे लोग नाराज़ हो जायेंगे; यह डर मुझे क्यों रहा ? ये सब मेरी त्रुटियाँ थीं। उन्हें मैं तटस्थ होकर देखता हूँ। उनका प्रत्यक्ष दर्शन करता हूँ; क्योंकि मुझमें अनासक्ति है। उन त्रुटियोंके लिये न तो मुझे दुख है, न पश्चाताप। जिस प्रकार मैं अपनी सफलता और शक्ति परमात्माकी ही देन समझता हूँ, उसीको अर्पण करता हूँ, उसी प्रकार अपने दोष भी भगवानके ही चरणोंमें रखता हूँ। ईश्वरने मुझ जैसे अपूर्ण मनुष्यको इतने बड़े प्रयोगके लिये क्यों चुना ? मैं अहंकारसे नहीं कहता। लेकिन मुझे विश्वास है कि परमात्माको गरीबोंमें कुछ काम लेना था, इसलिये उसने मुझे चुन लिया। मुझसे अधिक पूर्ण पुरुष होता तो शायद इतना काम न कर सकता। पूर्ण मनुष्यको हिन्दुस्तानी शायद पहचान भी न सकता। वह बेचारा विरक्त होकर गुफामें चला जाता। इसलिए ईश्वरने मुझ जैसे अशक्त और अपूर्ण मनुष्यको ही इस देशके लायक समझा। अब मेरे बाद जो आयेगा, वह पूर्ण पुरुष होगा। मैं कहता यह हूं कि वह पूर्ण पुरुष आप बनें। मेरी अपूर्णताओंको पूरा करें।

उच्च कुल और उच्च जाति

ऊँची जाति, पुराना कुल, बाप-दादोंसे पाया हुआ धन, पुत्र-पौत्र, रूप रंग आदिका जो अभिमान करता है, उसके बराबर कोई मूर्ख नहीं, क्योंकि इनके पानेके लिए, उसने कौनसी बुद्धि ख़र्च की। किसी बुद्धिमानने कहा है कि जो लोग बड़े घरानेके होनेकी डींग मारते हैं, वे उस कुत्तेके सदृश हैं, जो सूखी हड्डी चिचोड़ कर मगन होता है।

* * *

महान् पुरुषके ये लक्षण हैं—(१) जिसे दूसरेकी निन्दा बुरी लगती है और ऐसी बातको अनसुनी करके, किसीसे उसकी चर्चा नहीं करता। (२) जिसे अपनी प्रशंसा नहीं सुहाती, पर दूसरेकी प्रशंसासे हर्ष होता है (३) जो दूसरोंको सुख पहुँचाना अपने सुखसे बढ़कर समझता है (४) जो छोटोंसे कोमलता और दयाभाव तथा बड़ोंसे आदर-सत्कारके साथ व्यवहार करता है। ऐसे पुरुषको महापुरुष कहते हैं; केवल धन या ऊँचा कुल या जाति और अधिकारसे महानता नहीं आती।

❀ ❀ ❀

अनेक विद्वान् योग्य और देश हितैषी पुरुष जिनकी कीर्तिकी ध्वजा हज़ारों वर्षसे संसारमें फहरा रही हैं, प्रायः नीचे कुलमें उत्पन्न हुए थे। ऊँचे कुल और ऊँची जातिका होनेसे बड़ाई नहीं आती। प्रकृति पर ध्यान करो तो यही दशा जड़ खान तक चली गई है कि छोटी वस्तुओंमें बड़े रत्न होते हैं--देखो कमल कीचड़से, निकलता है, सोना मिट्टीसे, मोती सीपसे, रेशम कीड़ेसे, जहरमुहरा मेंडकसे, कस्तूरी मृगसे, आग लकड़ीसे, मीठा शहद मक्खीसे।

—महात्मा बुद्ध

[श्री डा० बी. एल. जैनके सौजन्यसे]

Register. No. L. 4328

श्री जैन प्राचीन साहित्योद्धार ग्रन्थावलीके

जैन मन्त्र-तन्त्र और चित्रकलाके अभूतपूर्व प्रकाशन

भगवन् मल्लिषेणाचार्य विरचित

१. श्री भैरव पद्मावती कल्प

आठ तिरँगे और पचास एक रंगे चित्र और बन्धुषेण विरचित टीका, भाषा समेत साथमें इकतीस परिशिष्टोंमें श्री मल्लिषेण सूरि विरचित सरस्वतीकल्प, श्री इन्द्रनंदी विरचित पद्मावती पूजन, रक्त पद्मावती कल्प, पद्मावती सहस्रनाम, पद्मावत्यष्टक, पद्मावती जयमाला, पद्मावती स्तोत्र, पद्मावती दंडक, पद्मावती पटल वगैरह मंत्रमय कृतियां और गुजरात कालेजके संस्कृत प्राकृत भाषाके अध्यापक प्रो० अभ्यंकर द्वारा सम्पादित होने पर भी मूल्य सिर्फ १५) रुपये रखा गया है।

२. श्री महाप्राभाविक नव स्मरण

पंचपरमेष्ठि मंत्रके चार यंत्र, श्रीभद्रबाहु स्वामी विरचित उपसर्गहर स्तोत्र, उनके अनेक मंत्र, कथा और सत्ताईस यंत्र समेत, श्रीमानतुंगाचार्य विरचित भयहर स्तोत्र उनके अनेक मंत्र तंत्र और २१ यंत्र समेत, श्रीभक्तामरजी स्तोत्र, मंत्राम्नाय, कथाएँ, तंत्र, मंत्र और हरेक काव्य पर दो दो यंत्र कुल ९६ यंत्र समेत और भगवन् सिद्धसेनदिवाकर विरचित श्रीकल्याणमंदिरजी स्तोत्र, उनके मंत्राम्नाय और ४३ यंत्र, चित्र वगैरह मिलाके कुल ४१२ चारसौ बारह यंत्र चित्र दिया हुआ है,एक प्रतिका पांच रतल वजन होने पर भी मूल्य २५) रु० रखा गया है।

३. श्री मंत्राधिराज चितामणि

श्रीचिन्तामणिकल्प, श्रीमंत्राधिराज कल्प वगैरह श्री पार्श्वनाथजी भगवानके अनेक मंत्रमय स्तोत्र और ६५ यंत्र समेत मूल्य ७॥) रु०

४. श्री जैन चित्रकल्पद्रुम्

गुजरातकी जैनाश्रित चित्रकलाके ग्यारहवीं सदी से लगाकर उन्नीसवीं सदी तकके लाक्षणिक नमूनाओंका प्रतिनिधी संग्रह, जिसमें ३२० पूर्ण रंगी और एक रंगी चित्र हैं, साथमें जैनाश्रित चित्रकलाके विषयमें अमेरिकाके प्रो०ब्राउनने, बड़ोदरा राज्यके पुरातत्वखातेका मुख्याधिकारी डा० हीरानन्द शास्त्रीजीने, गुजरातके सुप्रसिद्ध चित्रकार रविशंकर रावलने, रसिकलाल परीख, श्रीयुत साराभाई नवाब, प्रो० डालरराय मांकड़, प्रो० भंजुलाल मजमुदार और लेखनकलाके विषयमें विद्वद्वर्य मुनिश्री पुण्यविजयीके विद्वतापूर्ण लेख भी दिया है। यह ग्रन्थस्वर्गस्थ बड़ौदरा नरेश सयाजीराव गायकवाड़को उनके हीरक महोत्सव पर समर्पित किया गया था मूल्य सिर्फ २५) रु०

५. जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला मुनि जसवइ विरचित मूल्य ५)

६. श्री घंटाकरण–माणिभद्र–मंत्र-तंत्र कल्पादि संग्रह मूल्य ५)

७. श्रीजैन कल्पलता चित्र ६५ मूल्य ८)

८. भारतीय जैन श्रमण संस्कृति और लेखन कला मूल्य ८)

दूसरे प्रकाशनोंके लिये सूचीपत्र मंगवाइये।

प्राप्तिस्थान:–साराभाई मणिलाल नवाब, नागजीभूदरनी पोल, अहमदाबाद

वीर प्रेस आफ इण्डिया, कनाट सर्कस न्यू देहलीमें छपा।